अंक 4 संख्या 1 एवं 2 जनवरी-दिसम्बर 2017

भाकृअनुप
ICAR

कृषि-जल

भारतीय जल प्रबंधन संस्थान
ICAR-IIWM

जल प्रबंधन पर हिन्दी पत्रिका

भाकृअनुप – भारतीय जल प्रबंधन संस्थान

भुवनेश्वर, ओडिशा

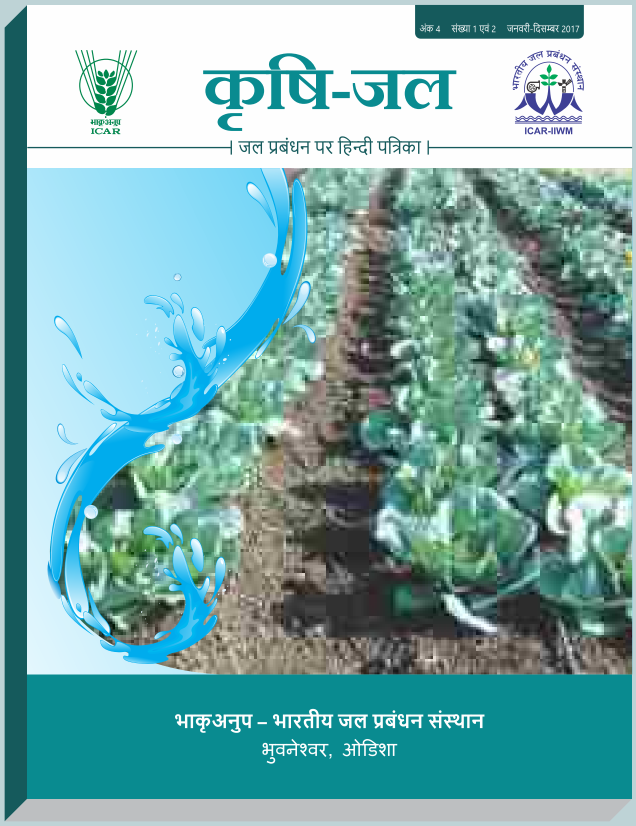

कृषि-जल

जल प्रबंधन पर हिन्दी पत्रिका

अंक 4 संख्या 1 एवं 2 जनवरी-दिसम्बर 2017

प्रकाशक

डॉ. सुनील कुमार अम्बष्ट, निदेशक

प्रधान संपादक

डॉ. ओम प्रकाश वर्मा

डॉ. अमोद कुमार ठाकुर

संपादक

डॉ. मुकेश कुमार सिन्हा

डॉ. प्रमोद कुमार पंडा

भाकृअनुप – भारतीय जल प्रबंधन संस्थान

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)

भुवनेश्वर- 751023, ओडिशा

दूरभाष : 0674-2300060, फैक्स : 0674-2301651

वेब साइट : www.iiwm.res.in

इस अंक में

शारदा सहायक कमांड क्षेत्र में अधिकतम धान के उत्पादन एवं जल उत्पादकता हेतु जल प्रबंधन तकनीक 01
आर.सी. तिवारी एवं बी.एन. सिंह

ओडिशा राज्य के तटीय क्षेत्रों में मीठे जल की उपलब्धता में वृद्धि हेतु तकनीकी विकल्प 04
रानुरानी सेठी, ओ.पी. वर्मा, आत्माराम मिश्र एवं एस.के. अम्बष्ट

जम्मू व कश्मीर के नहरी कमांड क्षेत्रों में धान-गेहूँ फसल अनुक्रम की जल उत्पादकता में सुधार हेतु किसानों के खेतों में लेजर लेवलर तकनीक का प्रसार 08
अशोक रैना

गुजरात के जल संसाधनों पर सिंचाई विधियों का प्रभाव 10
आर.बी. पटेल, जे.एम. पटेल, वी.पी. उसादड़िया, एन.जी. सवानी और के.के. पटेल

पूर्वी भारत के वर्षा आधारित क्षेत्रों में अनानास की खेती 19
ओ.पी. वर्मा, सोमनाथ रायचौधुरी, एम. रायचौधुरी एवं एस.के. अम्बष्ट

वर्षा जल संचयन एवं इसका बहुआयामी उपयोग तथा प्रबंधन 21
आर.सी. तिवारी एवं बी.एन. सिंह

पैन वाष्पीकरण मीटरः सिंचाई के उपयुक्त समय के निर्धारण हेतु एक उपयोगी उपकरण 24
एन. मणिकंडन, एस. प्रधान, पी. पानीग्राही, एस.के. राउतराय एवं जी. कर

मृदा प्रबंधन द्वारा जल उपयोग दक्षता में सुधार हेतु तकनीकी विकल्प 28
मधुमंती साहा, अभिजीत सरकार, त्रिशा रॉय एवं पार्थ देबरॉय

मानवीय हस्तक्षेप के कारण भूजल प्रदूषण 32
अभिजीत सरकार, मधुमंती साहा, त्रिशा रॉय, पी. देबरॉय, तानिया सेठ, ओ.पी. वर्मा, डी.के. पंडा एवं एस.के. अम्बष्ट

जल-मृदा-पौधे-भोजन शृंखला के द्वारा मनुष्यों में आर्सेनिक का एक्सपोजर-एक मूल्यांकन 36
पार्थ देबरॉय, ओ.पी. वर्मा, तानिया सेठ, अभिजीत सरकार, मधुमंती साहा एवं एस.के. अम्बष्ट

फसलों में सिंचाई के लिये अपशिष्ट जल का उपयोग 41
रचना दूबे, एम. रायचौधुरी, पी.एस. ब्रह्मानन्द एवं ओ.पी. वर्मा

खरीफ धान के बाद फसल की उत्पादकता को बढ़ाने और आय में वृद्धि के लिये कम से कम सिंचाई के साथ सूरजमुखी की खेती 44
सन्मय कुमार पात्र

नमी तनावः सब्जी वर्गीय फसलों पर इसका प्रभाव एवं संभावित प्रबंधन विकल्प 46
तानिया सेठ, पार्थ देब रॉय, ओ.पी. वर्मा एवं अभिजीत सरकार

फसल एवं जल की उत्पादकता तथा आय में वृद्धि हेतु कुसुम-मटर अंतरसस्य फसल पद्धति 52
सन्मय कुमार पात्र

सफलता की गाथा 54

संपादकीय

◆◆◆

मानसून पर कृषि की निर्भरता जगजाहिर है। लेकिन देश में जल एवं खाद्य सुरक्षा को प्राप्त करने के लिये कृषि क्षेत्र पर बढ़ रहे दबाव के चलते अब समय आ गया है कि मानसून पर कृषि की निर्भरता न्यूनतम हो तथा जल के वैकल्पिक संसाधन सदैव उपलब्ध रहें और विषम जलवायु परिस्थितियों का कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव भी कम से कम हो। यह केवल तभी मुमकिन हो सकता है जब जल सरंक्षण तथा विविध प्रकार के जल स्रोतों के पुन:भरण पर पूरा ध्यान दिया जाये। इसी लक्ष्य के प्रति सजग रहकर भाकृअनुप-भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर द्वारा लगातार कार्य किया जा रहा है।

हमारी पत्रिका के इस अंक में देश की सिंचाई वयवस्था के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गयी है और जल संसाधनों के पुन:भरण, जल के बहुआयामी उपयोग, नमी तनाव, मृदा प्रबंधन, जल उपयोग दक्षता में वृद्धि के लिये मृदा में उपस्थित जैविक कार्बन का महत्त्व, भूजल प्रदूषण, फसलों में सिंचाई के लिये औद्योगिक अपशिष्ट जल का उपयोग, वर्षा जल संचयन एवं सरंक्षण जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों को महत्त्व दिया गया है। इस पत्रिका में आधुनिक कृषि की तकनीक को अपनाकर एक सफल किसान बनने की यात्रा को 'सफलता की गाथा' नामक शीर्षक से प्रस्तुत किया गया है।

हमें आशा है कि यह पत्रिका अपने उद्देश्य में सफल होगी तथा पाठकों को 'कृषि जल प्रबंधन' संबंधी अद्यतन जानकारी उपलब्ध करवाने में सहायक सिद्ध होगी। पत्रिका में प्रकाशित आलेख एवं सामग्री लेखकों की अपनी है। तथा संपादकों का इससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

हम पत्रिका के प्रकाशन में सार्थक सहयोग प्रदान करने वाले सभी सहयोगियों के आभारी हैं।

संपादक

शारदा सहायक कमांड क्षेत्र में अधिकतम धान के उत्पादन एवं जल उत्पादकता हेतु जल प्रबंधन तकनीक

आर.सी. तिवारी एवं बी.एन. सिंह
सिंचाई जल प्रबंधन योजना
नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद (उत्तरप्रदेश)

कृषि के लिये जल एक सीमित संसाधन है जिसकी फसलोत्पादन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जल की कमी या अत्यधिक मात्रा के कारण फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संसार के समस्त जल संसाधनों का केवल 2.6 प्रतिशत जल ही पीने एवं फसलों की सिंचाई के लिये उपलब्ध है। इसलिये कृषि में इसका उपयोग आवश्यकतानुसार संतुलित मात्रा में करना बहुत ही आवश्यक है। अत: आज के इस जलवायु परिवर्तन के दौर में कृषि में जल की बचत करने की अत्यधिक आवश्यकता है। देश के उत्तरप्रदेश राज्य के शारदा सहायक नहरी कमांड क्षेत्र के अंतर्गत लगभग 15.50 लाख हेक्टेयर क्षेत्र आता है तथा यहाँ पारंपरिक तरीकों से लगभग 27.60 प्रतिशत क्षेत्र में ही सिंचाई हो पाती है। चाँदपुर रजबहा एवं इसकी छ: अल्पिकाओं के अधीन 4551 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र ही आता है (तालिका 1) एवं पारंपरिक विधियों से मात्र 27.68 प्रतिशत क्षेत्र की ही सिंचाई हो पाती है।

तालिका 1. चाँदपुर रजबहा एक दृष्टि में

क्रमांक	रजबहा एवं अल्पिकाएं	कल्चरल कमांड क्षेत्र (हे)	धान का सिंचित क्षेत्र (हे)	खरीफ में कुल सिंचित क्षेत्र (हे)
1.	चाँदपुर	2405	586.00	786.00
2.	हुंसेपुर	294	47.00	62.00
3.	बेगमगंज	343	49.00	87.00
4.	दौलतपुर	326	63.00	71.00
5.	कादीपुर	140	23.00	29.00
6.	पोरा	697	85.00	105.00
7.	केल	346	95.00	120.00
	कुल	4551	948	1260.00

धान खरीफ मौसम में पूर्वी उत्तरप्रदेश की प्रमुख फसल है जिसका भरपूर उत्पादन प्राप्त करने के लिये पौषक तत्वों का समुचित प्रयोग एवं उत्तम जल प्रबंधन नितांत आवश्यक है। धान की खेती लेव लगे खेत में रोपाई के द्वारा की जाती है। यहाँ कृषकों का मानना है कि धान के खेत में लगातार जल भरकर खेती करने से फसल का अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। जबकि कल्ले निकलते समय खेत में अधिक समय तक जल नहीं भरा

रहना चाहिये अन्यथा कल्लों की संख्या पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा साथ ही धान का उत्पादन भी कम हो जाता है। शारदा सहायक नहरी कमांड क्षेत्र में अधिकतर किसान धान की फसल में एक खेत से दूसरे खेत में बाढ़ सिंचाई विधि से 10–12 सेंटीमीटर गहराई की सिंचाई करते हैं जिससे जल की उत्पादकता काफी कम हो जाती है। साथ ही धान के खेत में लगातार जल भरे होने से कई तरह के संकट जैसे कीट एवं रोगों का प्रकोप बढ़ गया है एवं उर्वरक उपयोग दक्षता में भी कमी पायी गयी है जिसके फलस्वरूप धान का वांछित उत्पादन किसानों को प्राप्त नहीं हो पाता है। ऊपर वर्णित परिस्थितियों को ध्यान में रखकर चाँदपुर रजबहा के क्षेत्र में धान की फसल में 10 x 10 मीटर के चेक बेसिन विधि द्वारा 7 सेंटीमीटर जल प्रति सिंचाई की दर से सिंचाई जल सूखने के तीन दिन बाद सिंचाई करने से धान के उत्पादन, रोगों पर नियंत्रण, उर्वरक उपयोग क्षमता एवं सिंचाई जल की उत्पादकता में वृद्धि पायी गयी है।

किसानों के खेत पर उन्नत जल प्रबंधन तकनीक द्वारा धान की सिंचाई

किसानों के खेत पर उन्नत सिंचाई विधि द्वारा किये गये धान के परीक्षणों से प्राप्त आँकड़े तालिका 2 में प्रस्तुत किये गये हैं। किसानों को इस विधि द्वारा धान की फसल में सिंचाई करने से धान का उत्पादन 3.75 टन/हेक्टेयर से बढ़कर 4.80 टन/हेक्टेयर तक प्राप्त हुआ तथा सिंचाई जल की उत्पादकता 0.42 किग्रा/घनमीटर से बढ़कर 0.68 किग्रा/घनमीटर प्राप्त हुई जो यह दर्शाता है कि यह उन्नत सिंचाई तकनीक 27.90 प्रतिशत धान की उत्पादकता एवं 61.90 प्रतिशत जल की उत्पादकता में वृद्धि प्राप्त करने में सफल सिद्ध हुई। इसके साथ ही इस विधि से सिंचाई करने से 37.70 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत होती है जिससे 36.70 प्रतिशत धान का अतिरिक्त क्षेत्र इस उपलब्ध जल से सिंचित किया जा सकता है।

उन्नत सिंचाई जल प्रबंधन तकनीक के अंतर्गत धान की फसल

इस उन्नत विधि के अन्तर्गत धान का अधिक उत्पादन एवं सिंचाई जल में बचत होने के कारण पारंपरिक सिंचाई विधि के सापेक्ष किसानों को ₹ 18270 प्रति हेक्टेयर प्रति किसान अतिरिक्त शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ जिससे लगभग ₹ 2.32 करोड़ अतिरिक्त लाभ चाँदपुर रजबहा के किसानों को होने का अनुमान है जिसके कारण इस तकनीक का विस्तार शारदा सहायक नहरी कमांड क्षेत्र के किसानों में बहुत अधिक हो रहा है।

तालिका 2. धान की फसल में उन्नत जल प्रबंधन तकनीक की प्रमुख उपलब्धियाँ।

क्रमांक	विवरण		पारंपरिक सिंचाई पद्धति	उन्नत सिंचाई तकनीक
1.	धान उत्पादन	टन/हे	3.75	4.80
2.	जल उपयोग दक्षता	किग्रा/हे–मिमी	4.25	6.08
3.	जल उत्पादकता	किग्रा/घनमीटर	0.42	0.68
4.	उत्पादन वृद्धि	प्रतिशत	–	27.90
5.	सिंचाई जल बचत	प्रतिशत	–	37.70
6.	उत्पादन लागत	₹/हे	31435.00	29440.00
7.	शुद्ध लाभ	₹/हे	26690.00	44960.00
8.	अतिरिक्त लाभ	₹/हे	–	18270.00
9.	अतिरिक्त सिंचित क्षेत्रफल	प्रतिशत	–	36.70

धान का विक्रय मूल्य – ₹ 1550/क्विंटल

डॉ. एस के अम्बष्ट, निदेशक, भाकृअनुप–भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर किसानों से विचार विमर्श करते हुये

ओडिशा राज्य के तटीय क्षेत्रों में मीठे जल की उपलब्धता में वृद्धि हेतु तकनीकी विकल्प

रानुरानी सेठी, ओ.पी. वर्मा, आत्माराम मिश्र एवं एस.के अम्बष्ट
भाकृअनुप-भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर

प्रस्तावना

ओडिशा राज्य के तटीय क्षेत्रों में मानसून अवधि के दौरान अतिरिक्त जल का भराव और मानसून अवधि के बाद ताजा जल की अनुपलब्धता आदि जैसी दोहरी समस्याओं का सामना करना पड़ता है या करना पड़ रहा है। मौजूदा जल संसाधनों के लिये लवणीय जल का प्रवेश इस स्थिति को और भी अधिक गंभीर बना देता है और यह आमतौर पर मानवता और विशेष रूप से कृषि, मीठे जल के संसाधन, मछली पालन और जलीय कृषि के लिये बहुत बड़ी चुनौती है। ओडिशा राज्य की तटीय रेखा बंगाल की खाड़ी के किनारे 480 किलोमीटर तक फैली हुई है और इस तट रेखा से 0–10 किमी की दूरी के तहत स्थित क्षेत्रों में भूजल की अधिक पम्पिंग के कारण लवणता की समस्या अधिक पायी जाती है। इसलिये, वहाँ फसली क्षेत्र को बढ़ाने हेतु जल संसाधन विकसित करने के लिये बहुत ही सीमित विकल्प मौजूद हैं। इन क्षेत्रों में सिंचाई सुविधाओं के बुनियादी ढ़ांचे में कमी के कारण अधिकतम ताजा जल समुद्र में बह जाता है। अत: इस पारिस्थितिकी तंत्र में भूमि और जल की उत्पादकता बढाऩे के लिये पूरे वर्ष भर अधिक मीठे (ताजे) जल की उपलब्धता को सुविधाजनक बनाने हेतु उपयुक्त तकनीकी विकल्पों को विकसित और परिष्कृत करने पर पर्याप्त ध्यान देने की बहुत ही आवश्यकता है।

अनुसंधान क्षेत्र

इस अनुसंधान को भाकृअनुप-भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर द्वारा ओडिशा राज्य के केन्द्रापड़ा जिले के महाकालपड़ा ब्लॉक में आयोजित किया गया। यह क्षेत्र क्रमश: 20.40° से 20.50° उत्तरी अक्षांश और 86.45° से 86.75° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इस तट रेखा के किनारे औसत समुद्र का स्तर केवल 0–3 मीटर ही है। केन्द्रापड़ा जिले के सभी ब्लॉकों में से महाकालपड़ा ब्लॉक अपने कुल 4905.57 वर्ग किमी के भौगोलिक क्षेत्र के साथ सबसे अधिक आबादी वाला और सबसे बड़ा है। ओडिशा राज्य के केन्द्रापड़ा जिले में सभी ब्लाकों में औसत वार्षिक वर्षा (1994–2013) 1409.58 मिलीमीटर होती है जिसमें से 1236.73 मिमी (87.73%) मानसून मौसम (जून–अक्टूबर) के दौरान प्राप्त होती है। अधिकतम और न्यूनतम तापमान मई में 38.60°C तक और जनवरी में 11.20°C तक रहता है। फरवरी से मई तक भूजल स्तर की गहराई 1.2 मीटर से 3.5 मीटर के बीच बदलती रहती है जबकि मानसून के दौरान और मानसून के बाद भूमि की सतह से भूजल का स्तर 0.5 से 1 मीटर ऊपर रहता है। उच्च ज्वार के दौरान सुनिटी क्रीक के माध्यम से लवणीय जल के प्रवेश के कारण सिंचाई जल की विद्युत चालकता 1.5 से 27.3 डेसी सिमन्स/मीटर के बीच बदलती रहती है। इसलिये, रबी और ग्रीष्म ऋतु में क्रीक द्वारा भरे गये जल निकाय एवं क्रीक का जल सिंचाई के लिये उपयुक्त नहीं पाया गया।

ओड़िशा राज्य में केन्द्रापड़ा जिले के महाकालपड़ा ब्लॉक में स्थित सुनिटी ग्राम पंचायत के 3900 हेक्टेयर क्षेत्र को मानकर विस्तृत सर्वेक्षण किया गया। वहाँ का हाइड्रोलोजी क्षेत्र अपनी सीमा के साथ प्राकृतिक क्रीक्स (खाड़ियों) से घिरा हुआ है। लैंडसेट ईटीएम + उपग्रह छवि और क्षेत्र सर्वेक्षण का उपयोग करके भूमि उपयोग वर्गीकरण का पता लगाया गया जिससे पता चला कि लगभग 1322 हेक्टेयर क्षेत्र फसलों के अंतर्गत, 1300 हेक्टेयर क्षेत्र जंगल और प्राकृतिक झड़ियों के अंतर्गत आता है। क्रीक, जल निकाय, परती भूमि और आवासीय भूमि के अंतर्गत क्रमश: 684 हेक्टेयर, 11.73 हेक्टेयर, 281 हेक्टेयर और 280 हेक्टेयर क्षेत्र शामिल है। रबी मौसम के दौरान केवल 565 हेक्टेयर क्षेत्र ही दलहन और सब्जी वाली फसलों के अधीन है क्योंकि वहाँ फसलों की जल की माँग को पूरा करने के लिए उपयुक्त और पर्याप्त मात्रा में सिंचाई जल की उपलब्धता नहीं है।

अनुसंधान क्षेत्र में भूमि उपयोग का वर्गीकरण

ताजे जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिये स्लूइस गेट संरचना का प्रभाव

इस क्षेत्र का विस्तार से अध्ययन करने के बाद, तट रेखा से 15 किमी दूरी के भीतर तटीय क्षेत्रों में स्थित प्राकृतिक क्रीक्स (खाड़ी) और जल निकायों से सिंचाई जल का उपयोग करने के लिये एक तकनीकी विकल्प विकसित किया गया। इसमें क्रीक के मुहाने पर स्लूइस गेट संरचनाओं के निर्माण के माध्यम से 25 घनमीटर/सेकंड की दर से अपवाहित वर्षा जल का निकास करके इन क्षेत्रों की भूमि और कृषि उत्पादकता में सुधार किया गया। स्लूइस गेट संरचना के उपयुक्त स्थान की पहचान करने के लिये हाइड्रोलॉजिक और हाइड्रोलिक अध्ययन आयोजित किया गया। इस संरचना के माध्यम से क्रीक द्वारा लवणीय जल के प्रवेश को रोकने और मॉनसून मौसम के दौरान बाढ़ के पानी का निकास करने में मदद प्राप्त हुई। स्लुइस गेट संरचना के संचालन के बाद, ग्रीष्म ऋतु के दौरान लवणीय जल का प्रवेश कुल 16 डेसी सिमन्स/मीटर से लेकर ≤ 2 डेसी सिमन्स/मीटर तक रोका गया (तालिका 3)। क्रीक और जल निकायों में ताजा जल की उपलब्धता के कारण, रबी मौसम में कुल फसल क्षेत्र 565 हेक्टेयर से बढ़कर 720 हेक्टेयर तक बढ़ गया और गर्मी के मौसम में कुल फसल क्षेत्र में 200 से 274 हेक्टेयर तक वृद्धि हुई (तालिका 4)। मॉनसून मौसम के दौरान लगभग 2,000 हेक्टेयर के फसल वाले क्षेत्रों को जल निकास सुविधा प्रदान करके जलाक्रांत या जल भराव की स्थिति से बचाया गया क्योंकि स्लूइस गेट संरचना के माध्यम से अतिरिक्त बाढ़ के पानी का निकास हो गया था। इस प्रकार पूरे वर्ष भर ताजे जल की उपलब्धता सुनिश्चित की गई जिसके परिणामस्वरूप रबी और गर्मी के मौसम में फसलों की उत्पादकता में क्रमश: 36% और 26% तक की वृद्धि हुई।

तालिका 3. तकनीक के स्थापन से पहले और बाद में सुनिटी क्रीक के विभिन्न सेक्सन्स में जल गुणवत्ता में बदलाव

क्र. सं.	अक्षांश	देशांतर	स्थल की पहचान	तकनीक के हस्तक्षेप से पूर्व में				तकनीक के हस्तक्षेप से बाद			
				2013		2014		2015		2016	
				pH	EC (dS/m)	pH	EC (dS/m)	pH	EC (dS/m)	pH	EC (dS/m)
1	20.55°	86.71°	निसानीपल्ला	6.6	6.0	7.6	0.7	7.7	0.6	7.0	0.5
2	20.51°	86.69°	अलतंगा	6.9	1.5	8.4	1.8	8.4	1.2	7.8	1.3
3	20.49°	86.67°	बंधापड़ा	6.9	6.2	8.0	1.0	7.8	1.1	7.5	1.0
4	20.47°	86.65°	दुत्तापुर	6.9	7.4	7.1	1.5	7.1	1.4	7.2	1.3
5	20.45°	86.68°	पंचायत कार्यालय	7.4	8.2	7.2	1.5	7.1	1.4	6.9	1.3
6	20.44°	86.44°	बेणाकंडा	6.8	9.6	7.5	0.1	7.4	0.2	7.3	0.3
7	20.43°	86.69°	भाटेनी–1	7.4	15.1	8.0	0.1	8.0	0.2	7.8	0.1
8	20.42°	86.70°	भाटेनी –2	7.5	16.0	7.4	0.5	7.2	0.4	6.8	0.3
9	20.41°	86.70°	गोबरी नदी	7.5	16.0	7.2	2.6	7.1	2.1	6.9	2.0
10	20.46°	86.62°	सुनिटी	7.9	4.4	7.9	4.4	7.6	4.2	7.4	3.8

तालिका 4. स्लूइस गेट तकनीक के हस्तक्षेप से पूर्व में और बाद में अनुसंधान क्षेत्र के तहत कुल फसल क्षेत्र

क्र. सं.	फसल का मौसम/ फसल का प्रकार	क्षेत्र (हेक्टेयर)	
		तकनीक के हस्तक्षेप से पूर्व में	तकनीक के हस्तक्षेप से बाद में
	खरीफ मौसम		
1	धान	1200	1000
2	करेला	50	150
3	भिंडी	22	100
4	टमाटर	25	50
5	तोरई	25	22
	कुल	**1322**	**1322**
	रबी मौसम		
1	दलहन	500	635
2	टमाटर	5	7
3	परवल	5	7
4	करेला	5	7
5	भिंडी	10	13
6	कद्दू	20	25
7	बंद गोभी	10	13
8	फूल गोभी	10	13
	कुल	**565**	**720**
	गर्मी का मौसम		
1	धान	200	200
2	सब्जियाँ	–	74
	कुल	**200**	**274**

लवणीय जल का प्रवेश रोकने के लिए अठाराबांकी स्लूइस गेट सरंचना

स्लूइस गेट सरंचना के निर्माण से पहले सुनिटी क्रीक के किनारे कुल फसल क्षेत्र (गर्मी का मौसम)

स्लूइस गेट सरंचना के निर्माण के बाद सुनिटी क्रीक के किनारे सब्जियों की खेती का क्षेत्र (गर्मी का मौसम)

निष्कर्ष

बंगाल की खाड़ी की तट रेखा से 15 किमी के अंतर्गत स्थित ओडिशा राज्य के केन्द्रापड़ा जिले की सुनिटी ग्राम पंचायत में एक क्रीक के मुहाने पर स्लूइस गेट संरचनाओं के निर्माण के माध्यम से वहाँ की भूमि और जल उत्पादकता में सुधार किया गया। इस तकनीक के कारण मॉनसून मौसम के दौरान लगभग 2000 हेक्टेयर फसलीय क्षेत्र से बाढ़ के जल का निकास किया गया। इस तकनीक से वहाँ पूरे वर्ष भर मीठे जल की उपलब्धता सुनिश्चित की गई जिसके परिणामस्वरूप रबी और गर्मी के मौसम में फसलों की उत्पादकता में क्रमश: 36% और 26% तक की वृद्धि हुई। तटीय क्षेत्रों में इन नियंत्रित उपायों के निर्माण के बाद जल संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर खेत की आय को बढ़ाने के लिये इष्टतम फसल योजना विकसित की जा सकती है। इस तकनीक से हमारे देश के माननीय प्रधानमंत्री जी के द्वारा परिकल्पित दोगुनी कृषि आय के लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद मिल सकती है।

जम्मू व कश्मीर के नहरी कमांड क्षेत्रों में धान–गेहूँ फसल अनुक्रम की जल उत्पादकता में सुधार हेतु किसानों के खेतों में लेजर लेवलर तकनीक का प्रसार

अशोक रैना
सिंचाई जल प्रबंधन पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना केन्द्र,
शेर–ए–कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, श्रीनगर,
जम्मू एवं कश्मीर

प्रासंगिकता

जम्मू के विभिन्न नहरी कमांड क्षेत्रों में धान–गेहूँ फसल अनुक्रम के तहत कुल क्षेत्र 1.10 लाख हैक्टेयर आता है। इस क्षेत्र के कमांड क्षेत्रों में कृषि के लिये जल उपलब्धता में कमी के साथ साथ फसलों की पैदावार और इनपुट दक्षता में कमी मुख्य चिंता का विषय बनता जा रहा है। इसलिये, जल की कमी को देखते हुये यहाँ कम सिंचाई जल उपयोग के साथ अधिक फसल उत्पादन प्राप्त करना बहुत ही आवश्यक हो गया है। ट्रैक्टरों की सहायता से भूमि समतलन ने किसानों के खेतों को काफी हद तक समतल कर दिया है लेकिन फिर भी वहाँ ऊबड़–खाबड़ भूमि या भूमि के ऊँची–नीची रह जाने से किसानों के खेतों में जल का प्रयोग, वितरण और इसकी भंडारण क्षमता प्रभावित हो रही है। इस घटना के चलते कृषि भूमि के ऊँचे भागों पर जल की उपलब्धता में कमी के कारण जल उत्पादकता में असमानता है और भूमि के नीचे भागों में जल भराव की समस्या सामने आ रही है। इसके लिये बहुत सी तकनीकें काम में ली जा सकती हैं इनमें से एक है प्रिसीजन भूमि समतलन जिसमें भूमि को समतल करने के लिये लेजर लेवलर का प्रयोग किया जाता है। उचित भूमि समतलन को आधुनिक तकनीक जैसे लेजर लेवलर की सहायता द्वारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता है जिससे सिंचाई जल की बचत होती है जिसके परिणामस्वरूप सिंचाई जल की उपयोग दक्षता बढ़ जाती है। और इसके अलावा फसलों की उपज में वृद्धि के कारण कृषि से किसानों की आय में भी वृद्धि होती है।

तकनीकी का विवरण

आज इस आधुनिक कृषि के युग में प्राकृतिक संसाधन जैसे जल एवं भूमि का संरक्षण करने के लिये प्रिसीजन भूमि समतलन की तकनीक बहुत ही प्रचलित होती जा रही है। प्रिसीजन भूमि समतलन में इस प्रकार का भौगोलिक परिवर्तन शामिल होता है कि जिससे खेतों में भूमि पर 0 से 0.2% तक निरंतर ढ़लान का निर्माण हो जाता है। इस तकनीक में बड़े हॉर्स पावर वाले ट्रैक्टरों और मृदा मूवर्स यंत्रों का उपयोग करके मृदा की कटाई या भराई द्वारा खेतों में वांछित भूमि ढ़लान/स्तर प्राप्त किया जाता है जो कि ग्लोबल पोजीस्निंग सिस्टम (GPS) या लेजर–निर्देशित उपकरण से संचालित होता है ताकि खेत की मृदा को किसी भी दिशा में स्थानांतरित किया जा सके और कृषि भूमि को अच्छे से समतल किया जा सके। इसमें समग्र बेहतर उत्पादकता प्राप्त करने के लिये सबसे पहले भूमि की ग्रेडिंग जरूरी होती है और इसी वजह से इस तकनीक को धान–गेहूँ फसल अनुक्रम में संसाधन (जल एवं भूमि) संरक्षण तकनीक के रूप में भी जाना जा सकता है।

इस तकनीक को अपनाने के कारण जल के प्रयोग, वितरण और भंडारण क्षमता तथा प्रयोग किये गये पौषक तत्वों और सिंचाई जल की उपयोग क्षमता में वृद्धि के कारण लेजर लेवलर से समतल हुए भूखंडों में विभिन्न फसलों के उपज स्तर में सुधार प्राप्त हुआ है। यह संसाधन सरंक्षण तकनीक जम्मू में नहरी कमांड क्षेत्रों के तहत लगभग 1.10 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में उगाये जाने वाले धान–गेहूँ फसल अनुक्रम के लिये बहुत ही अनुकूल है।

उत्पादन और स्केलेबिलिटी

जम्मू में इस महत्त्वपूर्ण तकनीक के हस्तक्षेप के कारण समतल किये गये प्लॉटों में भूमि समतलन सूचकांक में 3.1 से लेकर 4.7 तक वृद्धि हुई। किसानों के खेतों में जल वितरण और जल भंडारण क्षमता में क्रमशः 80% और 70% तक बढ़ोतरी हुई। यहाँ सबसे अधिक प्रचलित धान–गेहूँ फसल अनुक्रम के तहत उपज में 10.1 क्विंटल/हेक्टेयर की बढ़ोतरी प्राप्त हुई। इस महत्त्वपूर्ण फसल अनुक्रम में इस तकनीक को अपनाकर लगभग 25% तक सिंचाई जल को बचाया जा सकता है। लेजर लेवलर पर ₹ 12000/हेक्टेयर (5 वर्षों में एक बार) के व्यय के बाद धान–गेहूँ फसल अनुक्रम से ₹ 11000/हेक्टेयर/वर्ष का अतिरिक्त लाभ प्राप्त किया जा सकता है। लेजर लेवलर के द्वारा भूमि समतलन के अन्य लाभों में खरपतवार और चूहों का प्रभावी नियंत्रण आदि भी शामिल हैं।

लेजर लेवलर तकनीक द्वारा भूमि समतलन

लेजर लेवलर तकनीक द्वारा भूमि समतलन के बाद धान की खेती

गुजरात के जल संसाधनों पर सिंचाई विधियों का प्रभाव

आर.बी. पटेल, जे.एम. पटेल, वी.पी. उसादड़िया, एन.जी. सवानी और के.के. पटेल
मृदा और जल प्रबंधन अनुसंधान इकाई,
नवसारी कृषि विश्वविद्यालय, नवसारी (गुजरात)
सिंचाई जल प्रबंधन पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना, एनएयू केंद्र, नवसारी (गुजरात)

प्रस्तावना

गुजरात राज्य भारत के पश्चिमी भाग में स्थित है। यह पश्चिम में अरब सागर, पूर्वोत्तर में राजस्थान राज्य, उत्तर में पाकिस्तान के साथ अंतराष्ट्रीय सीमा, पूर्व में मध्य प्रदेश राज्य और दक्षिण-पूर्व व दक्षिण में महाराष्ट्र राज्य की सीमाओं से घिरा हुआ है। भारत में इस राज्य का 1600 किलोमीटर की लंबाई के साथ सबसे लंबा समुद्र तट है। यह 20°01' से 24° उत्तरी अक्षांश और 68°04' से 74°04' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। यह राज्य अपने 19.6 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र के साथ देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र में 6 प्रतिशत का योगदान देता है। पहले इस राज्य में 19 जिले थे बाद में यह राज्य वर्ष 1998 के दौरान 25 तथा वर्ष 2007 के दौरान 33 जिलों में विभाजित हो गया। वर्ष 2010 की जनगणना के मुताबिक राज्य की आबादी 60.30 मिलियन थी जो देश की आबादी की लगभग 5 प्रतिशत है।

जल संसाधन

गुजरात राज्य में जल संसाधन बहुत ही सीमित हैं। वहाँ की प्रमुख नदियों जैसे तापी (उकाई-काकरापार), माही (माही-कदाना), साबरमती (धरोई) आदि के जल का उपयोग करने के लिये पहले से ही पर्याप्त कदम उठाए गए हैं। आगे भी नर्मदा नदी के जल संसाधनों का उपयोग करने के लिये प्रयास पूरी गति से उठाए जा रहे हैं। राज्य के प्रमुख हिस्सों में कम वर्षा और मुख्य रूप से मृदा की जलोढ़ प्रकृति के कारण यहाँ अन्य छोटी छोटी नदियों की जल क्षमता सीमित ही नहीं है बल्कि इनसे बहुत सारी समस्याएं भी सामने आ रही हैं। इसके विपरीत भूजल क्षमता केवल 16 हजार मिलियन घन मीटर ही है। यद्यपि, दक्षिण और मध्य गुजरात का संयुक्त योगदान अधिकतम है फिर भी सतही जल की क्षमता के विपरीत जहाँ इस क्षेत्र का योगदान 84 प्रतिशत है लेकिन भूजल क्षमता में इस क्षेत्र का योगदान केवल 35 प्रतिशत ही है।

प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता

वर्ष 2010 की जनगणना के अनुसार राज्य स्तर पर प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 1121 घन मीटर प्रति वर्ष ही दर्ज की गई थी। फॉलकेंमार्क ने प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता की पर्याप्तता का मूल्यांकन करने के लिये इसके महत्वपूर्ण स्तर यानि 1700 घन मीटर जल/व्यक्ति का सुझाव दिया है। अगर हम इस मानक के अनुसार चलते हैं तो यह राज्य जल की कमी की श्रेणी के अंतर्गत आता है। इस संदर्भ में उत्तरी गुजरात के चार जिले अर्थात् मेहसाणा, पाटण, गांधीनगर और बनासकांठा तथा मध्य गुजरात का अहमदाबाद जिला भूजल के संदर्भ में अति दोहित श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इसके दूसरी ओर दक्षिणी गुजरात के जिलों में भूजल का उपयोग बहुत खराब था। सूरत जिले में भूजल का अधिकतम संतुलन 823 मिलियन घन मीटर/वर्ष पाया गया जहाँ केवल 36 प्रतिशत ही भूजल का उपयोग हो रहा है।

भूजल की गुणवत्ता

राज्य में भूजल की गुणवत्ता तीन मुख्य घटकों से मापी जाती है। वे घटक मुख्य रूप से लवण की सांद्रता, नाइट्रेट और फ्लोराइड हैं। लवण की सांद्रता के दृष्टिकोण से पूर्वी बेल्ट के जिलों जैसे डांग से लेकर साबरकांठा तक का जल आमतौर पर अच्छा है जबकि गुजरात के तटीय क्षेत्रों एवं तटवर्ती क्षेत्रों के अंतर्देशीय क्षेत्रों में लवणता/क्षारीयता की समस्या देखी जा सकती है। सौराष्ट्र क्षेत्र के अमरेली और भावनगर जिलों में नाइट्रेट की समस्या अधिक रहती है और उत्तर गुजरात के क्षेत्र में फ्लोराइड की समस्या सबसे ज्यादा पायी गई है।

सिंचाई की स्थिति

गुजरात राज्य के कुल रिपोर्टिंग क्षेत्र 188 हजार वर्ग किलोमीटर में से 99.66 लाख हेक्टेयर क्षेत्र ही शुद्ध बोया गया क्षेत्र है। यहाँ सभी उपलब्ध जल संसाधनों के साथ यह अनुमान लगाया गया है कि राज्य में कुल 64.88 लाख हेक्टेयर क्षेत्र की अंतिम सिंचाई क्षमता उपलब्ध है जिसमें से अब तक 37.34 लाख हेक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई क्षमता निर्मित की जा चुकी है। नहर से कुल सिंचित क्षेत्र 9.13 लाख हेक्टेयर है जो कुल सिंचित क्षेत्र में 19% का योगदान देता है जबकि भूजल से कुल सिंचित क्षेत्र 81% के रूप में है। राज्य में टैंक कमांड से सिंचित क्षेत्र केवल 1% से भी कम है।

भूजल स्तर में चढ़ाव

गुजरात में जल निकास, लवणता और क्षारीयता आदि जैसे दुष्प्रभाव दोनों प्रमुख परियोजनाओं यानि दक्षिण गुजरात में तापी नदी पर उकाई–काकरापार और मध्य गुजरात में माही नदी पर माही–कदाना में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। दक्षिण गुजरात में इन समस्याओं की गंभीरता अधिक है क्योंकि मध्य गुजरात की तुलना में यहाँ अधिक वर्षा होती है और मृदा की बनावट भी भारी है। इसके अलावा, उकाई–काकरापार की सूरत शाखा में भूजल स्तर की बढ़ती दर से यह संकेत मिलता है कि कम से कम 40 प्रतिशत क्षेत्र आने वाले समय में कम से कम 10 वर्षों के दौरान जलाक्रांत ग्रसित क्षेत्र हो जाएगा।

भूजल स्तर में गिरावट

दक्षिण और मध्य गुजरात की तुलना में उत्तरी गुजरात में भूजल स्तर में गिरावट गंभीर चिंता का विषय है। इसके परिणामस्वरूप, आज वर्तमान में उत्तरी गुजरात (बनासकांठा, साबरकांठा, मेहसाणा और गांधीनगर) के सभी जिले तथा कच्छ सहित मध्य गुजरात का अहमदाबाद जिला अधिक भूजल दोहित क्षेत्रों में आते हैं। इतना ही नहीं यहाँ भूजल स्तर में गिरावट की दर 0.3 मीटर/वर्ष दर्ज हो चुकी है और भूजल की गुणवत्ता भी एक गंभीर दर से खराब हो रही है। नतीजतन, उत्तरी गुजरात में अधिकांश भूजल जल सिंचाई और पीने के लिये अयोग्य हो रहा है।

तकनीकी उपाय

इस राज्य में जल प्रबंधन की जटिल समस्याओं को दूर करने के लिये गुजरात कृषि विश्वविद्यालय द्वारा ठोस प्रयास किये गये हैं और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, अन्य एर्जेंसियों, केन्द्र सरकार और विदेशी एर्जेंसियों से वित्तीय सहायता के साथ राज्य के अन्य विश्वविद्यालयों द्वारा भी प्रयास किये जा रहे हैं। महत्त्वपूर्ण शोध निष्कर्षों के आधार पर कुछ तकनीकी उपाय नीचे संक्षेप में वर्णित किये जा रहे हैं।

जल उपयोग दक्षता में सुधार के लिए तकनीकें

सिंचाई जल के दक्ष उपयोग के लिये उपलब्ध कुछ शोध आधारित तकनीकों की यहाँ पर चर्चा की गई है जैसे कि सतही सिंचाई तकनीकें, सिंचाई की आधुनिक पद्धतियाँ, फसल का चयन, पलवार का प्रयोग, फसलों की वाष्पोत्सर्जन माँग को पूरा करने के लिये भूजल का सीधे सीधे उपयोग एवं जल निकास की सुविधा से जल उपयोग दक्षता में सुधार करने के लिये प्रयोग किया गया जिनका विस्तार से वर्णन नीचे प्रस्तुत किया गया है ।

सतही सिंचाई तकनीकें

आम तौर पर जल की निर्वहन हानि, असमतल खेत, अनुचित सिंचाई कार्यक्रम को अपनाने, सिंचाई प्रणाली के दोषपूर्ण डिजाइन, कमांड क्षेत्र में सुझाई गई फसलों एवं फसल पद्धति की अनुपस्थिति तथा अनावश्यक जल आपूर्ति आदि कई कारणों की वजह से सतही सिंचाई के तरीकों की सिंचाई दक्षता बहुत खराब होती है। हालांकि, यहाँ कुछ ऐसी तकनीकें भी हैं जिनके माध्यम से सिंचाई जल का दक्ष उपयोग किया जा सकता है।

धान

गुजरात राज्य में धान की खेती के अंतर्गत कुल 803700 हेक्टेयर क्षेत्र है जिसमें से 494100 हेक्टेयर क्षेत्र में ही सिंचित धान की खेती होती है। धान अधिक जल आवश्यकता वाली फसल है। धान के खेतों से परकोलेशन जल की हानि के प्रमुख स्रोतों में से एक है। इस हानि को मृदा आधारित पडलिंग विधि अपनाकर प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। इसके लिये आम तौर पर केज पहियों के साथ पावर टिलर का उपयोग करने की सलाह दी जाती है। धान के खेतों से जल की हानि का एक अन्य प्रमुख स्रोत भूमि का लगातार जलमग्न रहना है। खेतों में प्रयोगों के माध्यम से यह स्थापित किया गया है कि धान की फसल के लिये खेत का निरंतर जलमग्न रहना जरूरी नहीं है। इसी प्रकार, किसानों द्वारा धान के खेतों में रखी गई सिंचाई जल की गहराई यहाँ पर सुझाए गये सिंचाई जल स्तर यानि 5 सेंटीमीटर से अधिक ही रहती है जो वास्तव में जरूरी नहीं है। कुल 30 से 50 प्रतिशत की सिंचाई जल बचत के साथ वैकल्पिक गीली एवं और सुखी सिंचाई विधि को अपनाकर धान की दाना पैदावार में काफी वृद्धि हो सकती है (तालिका 5)।

तालिका 5. जल प्रबंधन विधियों का धान की फसल पर प्रभाव (तीन वर्षों का औसत)

क्र. सं.	विवरण	अनुसंधान ब्लॉक	नियंत्रण ब्लॉक
1.	कुल धान का क्षेत्र (हे)	29.4	10.4
2.	कुल प्रयोग किया गया सिंचाई जल (हे मिमी)*	1197	1686
3.	धान की उपज (किग्रा/हे)	6627	6007
4.	प्रयोग किये गये जल की जल उपयोग दक्षता (किग्रा/हे–मिमी)	5.5	3.5
5.	नियंत्रण ब्लॉक की तुलना से जल बचत (%)	29.0	---
6.	नियंत्रण ब्लॉक की तुलना से जल उपयोग दक्षता	55.3	---

*खेत में पौध को लगाने एवं पडलिंग में जल की आवश्यकता को छोड़कर प्रयोग की गई सिंचाई जल की मात्रा

अन्य खेती योग्य फसलें

रबी या गर्मी के मौसम के दौरान उगाई गई फसलों के लिये वैज्ञानिक आधार पर सिंचाई के समय के निर्धारण पर सराहनीय अनुसंधान हुआ है। यद्यपि, विभिन्न फसलों में सिंचाई के कार्यक्रमों को किसानों द्वारा अपनाया गया है लेकिन सिंचाई की गहराई आम तौर पर अनुशंसित गहराई से अधिक रहती है। यह खेतों के स्तर पर खराब जल उपयोग दक्षता के लिये जिम्मेदार महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। सतही सिंचाई विधि में उचित भूमि विन्यास को अपनाने से विशेष रूप से कपास, गन्ना एवं अरंडी आदि अधिक दूरी पर बुआई वाली फसलों में पर्याप्त सिंचाई जल की बचत प्राप्त हुई है (तालिका 6)। कपास, गन्ना और अरंडी जैसी फसलों में वैकल्पिक कुंड सिंचाई तकनीक को अपनाने से 50 प्रतिशत की मात्रा में सिंचाई जल की बचत प्राप्त हुई जो अंततः जल उपयोग दक्षता में सुधार लाती है।

तालिका 6. प्रत्येक कुंड में सिंचाई एवं वैकल्पिक कुंड सिंचाई तकनीक को अपनाने से विभिन्न फसलों की जल उपयोग दक्षता

फसल	प्रत्येक कुंड में सिंचाई		वैकल्पिक कुंड		जल उपयोग दक्षता (किग्रा/हे-मिमी)	
	प्रयोग किया जल (मिमी)	उपज (टन/हे)	प्रयोग किया जल (मिमी)	उपज (टन/हे)	सभी कुंड	वैकल्पिक कुंड
कपास	420	0.730	210	0.736	1.73	3.50
गन्ना	1140	102	570	97	89.39	169.8
अरंडी	300	2.97	250	3.12	9.9	12.5

प्रत्यारोपित धान आधारित सभी फसल अनुक्रमों में रबी या गर्मियों के मौसम की फसलों की पैदावार आम तौर पर कम प्राप्त होती है क्योंकि धान में पड्लिंग के कारण मृदा के भौतिक गुणों में कमी हो जाती है। अगर किसानों द्वारा रबी और गर्मियों के मौसम की फसलों के लिये ऊँची क्यारी तकनीक को अपनाया जाये तो फसलों की पैदावार में 10 से 25 प्रतिशत की वृद्धि के साथ 20 से 30 प्रतिशत जल की बचत हो सकती है। सिंचाई जल प्रबंधन पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना द्वारा ऊँची क्यारी नामक भूमि विन्यास पद्धति को किसानों के खेतों में बडे पैमाने पर प्रदर्शित किया गया है। फसलों के चयन के बावजूद इस तकनीक को अपनाने से 35–39 प्रतिशत की जल बचत के साथ 8.6–23.10 प्रतिशत की उपज में वृद्धि दर्ज की गई (तालिका 7)

तालिका 7. दक्षिणी गुजरात की विभिन्न तहसीलों के तहत विभिन्न फसलों की उपज एवं जल उपयोग दक्षता पर भूमि विन्यास का प्रभाव

फसल (प्रदर्शनों की संख्या)	तहसील	किसानों की विधि/ भूमि विन्यास	प्रयोग किए गए जल की कुल मात्रा (मिमी)	औसत उपज (क्विं/हे)	उपज में वृद्धि (%)	जल उपयोग दक्षता (किग्रा/हे-मिमी)	किसानों की विधि की तुलना से जल उपयोग दक्षता में
गेहूँ (12)	जालापोर कामरेज ओलपेड	किसानों की विधि	234	27.6	---	11.8	---
		भूमि विन्यास	172	32.3	17.3	18.8	60
फूल गोभी (2)	कामरेज	किसानों की विधि	450	150	---	33.4	---
		भूमि विन्यास	340	185	23.1	54.4	63

प्याज (12)	जालापोर कामरेज ओलपेड	किसानों की विधि	420	152	---	36.1	---
		भूमि विन्यास	313	182	19.9	58.1	61
अरंडी (5)	जालापोर कामरेज ओलपेड	किसानों की विधि	313	16.3	---	5.2	---
		भूमि विन्यास	229	18.9	16.0	8.3	60
बैंगन (2)	जालापोर ओलपेड	किसानों की विधि	480	139	---	29.0	---
		भूमि विन्यास	340	151	8.6	44.4	53

सिंचाई की आधुनिक विधियाँ और पलवार तकनीकें

जल की उपलब्धता के आधार पर गुजरात राज्य में दो चरम स्थितियाँ अधिक पायी जाती हैं। दक्षिण और मध्य गुजरात में भरपूर मात्रा में उपलब्ध जल के दुरुपयोग के कारण जलाक्रांत और लवणता की समस्यायें बढ़ रही हैं। दूसरी तरफ, सौराष्ट्र और राज्य के उत्तरी हिस्सों में भूजल स्तर में गिरावट हो रही है तथा भूजल की गुणवत्ता इस हद तक खराब हो गई है कि यह सिंचाई के लिए उपयुक्त नहीं है। इन दोनों विषम परिस्थितियों में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली का उपयोग बेहद ही उपयुक्त विकल्प है। दक्षिणी गुजरात, गुजरात राज्य का बागान बेल्ट है। फलों के अलावा, यहाँ काफी क्षेत्र सब्जियों और गन्ना की फसल के अंतगत भी हैं। तदनुसार, राज्य भर में 40 विभिन्न फसलों की सिंचाई करने के लिये लगभग 140 सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों का विकास किया गया है और किसानों के लिये इनके उपयोग हेतु सलाह भी दी गई है। यह देखा गया है कि अधिकतर फसलों के लिये सुझाई गई सतही सिंचाई विधि की तुलना में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के तहत जल की बचत 20 से 60 प्रतिशत तक होती है। उपज में वृद्धि शून्य से 60 प्रतिशत तक होती है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के माध्यम से प्राप्त हुये लाभों को देखते हुए गुजरात सरकार ने वर्ष 2005 में गुजरात हरित क्रांति कंपनी की स्थापना की। इस कंपनी की स्थापना के बाद सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के तहत सिंचित क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई है और वर्तमान में (2016-17) यह क्षेत्र लगभग 12.50 लाख हेक्टेयर तक हो गया है।

सूक्ष्म सिंचाई और सरकारी प्रयासों से प्राप्त लाभों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न चीनी कारखानों ने भी गन्ना की फसल में ड्रिप सिंचाई पद्धति को स्थापित किया है। मोहिनी पियतमंडली सूरत शाखा की नहर के कमांड में विभिन्न फसलों के लिये लगभग 170 हेक्टेयर क्षेत्र में ड्रिप सिंचाई पद्धति का विस्तार एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है जो कि नहर पर एक जलाशय के रूप में गाँव के तालाब में केंद्रीयकृत पंपिंग प्रणाली से जुड़ी हुई है।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली द्वारा करेला की खेती

ड्रिप सिंचाई प्रणाली द्वारा गन्ना की खेती

ड्रिप सिंचाई प्रणाली की लागत को कम करने के लिये गन्ना, केला, अरंडी, कपास और कुछ अन्य सब्जियों की फसलों के साथ किये गये अनुसंधान कार्यो से पता चला कि परंपरागत अंतर से लगाई जाने की युग्मित पंक्ति विधि को बदलने से प्रणाली की लागत को लगभग 40–50% तक कम किया जा सकता है। इन तकनीकों को किसानों के खेतों पर भी प्रदर्शित किया गया है और अब किसान इनको व्यापक पैमाने पर अपना भी रहे हैं।

1) ड्रिप सिंचाई प्रणाली

सिंचाई जल प्रबंधन पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना इकाई द्वारा विकसित ड्रिप सिंचाई तकनीक किसानों के बीच में तकनीकी कार्यक्रम के प्रभावी हस्तांतरण के कारण काफी लोकप्रिय हो गई है। वर्ष 1990 के दौरान बागवानी फसलों में ड्रिप सिंचाई के तहत क्षेत्र 1603 हेक्टेयर ही था जो वर्ष 2016 तक 22000 हेक्टेयर क्षेत्र तक बढ़ गया है, यहाँ यह इस बात का प्रमाण है। इसके अलावा, इस इकाई द्वारा किये गये सर्वेक्षण के आधार पर फसलों की उपज में वृद्धि एवं सिंचाई जल के साथ साथ उर्वरकों की बचत के बारे में किसानों की राय तालिका 8 में प्रस्तुत की गई है।

ड्रिप सिंचाई पद्धति जड़ क्षेत्र में अधिक आवृत्ति पर आवश्यक पौषक तत्व के प्रयोग की सुविधा प्रदान करती है जिससे फसलों में पौषक तत्वों की उपयोग दक्षता काफी बढ़ जाती है। इसके कारण अलग-अलग फसलों में ड्रिप सिंचाई प्रणाली के माध्यम से उर्वरकों की खुराक में 20 से 40 प्रतिशत तक कमी या बचत हो सकती है (तालिका 9 एवं 10)। इस तकनीक को प्रभावी ढंग से प्रदर्शन, प्रशिक्षण, ऑडियो विजुअल एड्स और समाचार पत्र आदि के माध्यम से किसानों तक पहुँचाया गया है।

तालिका 8. ड्रिप सिंचाई प्रणाली के लाभ के संदर्भ में किसानों की राय

क्र. सं	फसलें	प्रणाली का विवरण			उपज में वृद्धि (%)	सिंचाई जल की बचत (%)	उर्वरकों की बचत (%)
		लेटरल की दूरी (सेमी)	ड्रिप्पर की दूरी (सेमी)	ड्रिप्पर की जल निष्पादन दर (लीटर/घंटा)			
1	गन्ना	180	60	4	23	38	50
2	केला	320	100	4	28	40	–
3	अरंडी	180	120	8	32	38	60% नाइट्रोजन
4	स्मूथ गौर्ड	200	100	4	13	57	–
5	रबी अरंडी	180	120	8	–	39	40% नाइट्रोजन
6	मक्का (स्वीट कॉर्न)	180	100	8	66	20	–
7	प्याज	80	80	4/8	36	39	–

तालिका 9. सतही एवं ड्रिप सिंचाई प्रणाली के तहत फसलों के प्रदर्शन की तुलना

फसलें	उपज (किग्रा/हे)		जल की आवश्यकता (मिमी)		सतही विधि की तुलना से ड्रिप सिंचाई प्रणाली के तहत उपज में वृद्धि (किग्रा/हे)	उपज में वृद्धि (%)	जल की बचत (मिमी)	जल की बचत (%)	जल की बचत के कारण अतिरिक्त क्षेत्र में खेती (हे)
	सतही सिंचाई विधि	ड्रिप सिंचाई पद्धति	सतही सिंचाई विधि	ड्रिप सिंचाई पद्धति					
बीटी–कपास	3266	3637	719	431.4	371	11	287.6	40	0.67
गन्ना	112000	130000	1263	720	18000	16	543	43	0.75
बैंगन	33000	46000	780	428	13000	39	352	45	0.82
केला	77000	97000	1688	1059	20000	26	629	37	0.59
अरंडी (रबी)	2400	2670	546	334	270	11	212	39	0.63
प्याज	26000	32000	540	330	6000	23	210	39	0.64
चीकू	12484	14195	620	381	1711	14	239	39	0.63
करेला	21570	25370	802	479	3800	18	323	40	0.67
पपीता	48000	61000	1380	828	13000	27	552	40	0.67
तरबूज	18300	27100	580	408	8800	48	172	30	0.42
हल्दी	16500	20700	860	588	4200	25	272	32	0.46

तालिका 10. सतही सिंचाई विधि की तुलना में फर्टिगेशन विधि के तहत उर्वरकों की बचत

फसलें	फसल की जल आवश्यकता (मिमी)		उर्वरकों की सुझाई गई दर (किग्रा/हे)			उर्वरकों की बचत (%)	फर्टिगेशन के कारण बचत (रु/हे)
	सतही सिंचाई विधि	ड्रिप सिंचाई विधि	N	P	K		
बीटी–कपास	719	431.4	180	0	0	25	540
गन्ना	1263	720	250	125	125	40	5150
बैंगन	780	428	100	50	50	20	1030
केला	1688	1059	1042	312	694	40	19763
अरंडी (रबी)	546	334	80	40	0	10	284
प्याज	540	330	100	50	50	20	1030
चीकू	620	381	120	30	120	20	1338
करेला	802	479	60	60	60	15	819
पपीता	1380	828	347	347	434	0	0
तरबूज	580	408	150	75	75	0	0
हल्दी	860	588	60	60	60	20	1092

2) स्प्रिकलर (छिड़काव) सिंचाई तकनीक

विभिन्न फसलों के लिये इस सिंचाई प्रणाली की तकनीकी-आर्थिक व्यवहार्यता का मूल्यांकन किया गया जिसके परिणामस्वरूप अलग अलग कृषि जलवायु क्षेत्रों के लिये सिफारिशें जारी की गईं हैं। स्प्रिकलर सिंचाई प्रणाली के माध्यम से लहसुन एवं प्याज की फसलों में सिंचाई जल की बचत क्रमश: 21% और 42% थी जबकि लहसुन एवं प्याज की उपज में 37% और 23% तक की वृद्धि हुई थी (तालिका 11)।

तालिका 11. किसान समुदाय के लिये स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली की सिफारिश

क्र. सं.	फसलें	पद्धति का विवरण		उपज में वृद्धि (%)	सिंचाई जल की बचत (%)	टिप्पणी
		स्प्रिकलर की दूरी (मीटर)	सिंचाइयों की संख्या (दिन: मिमी)			
1	लहसुन (GAU G.1)	2.0 x 2.0	10 (50)	37	21	प्रभावी खरपतवार प्रबंधन के लिये हर्बीगेशन
2	प्याज (गुजरात रेड)	2.0 x 2.0	5 (50)	23	42	20 % नाइट्रोजन की बचत

3) पलवार तकनीक

वर्षा आधारित और सिंचित दोनों ही परिस्थितियों के तहत पलवार एक महत्वपूर्ण तकनीक है। विभिन्न प्रकार की घास, फसल अवशेष एवं विभिन्न मोटाई की काले रंग की प्लास्टिक आदि पलवार सामग्रियों का परीक्षण किया गया है। इस केंद्र ने भी सिंचित परिस्थिति के लिये पलवार तकनीक विकसित की है। पलवार पर अनुसंधान को सतही एवं ड्रिप सिंचाई के तरीकों के साथ आयोजित किया गया है। सतही सिंचाई पद्धति में पलवार के प्रयोग के परिणामस्वरूप जल की बचत में 40 से 70% तक की वृद्धि हुई और उपज में 18 से 49 प्रतिशत की वृद्धि हुई। ड्रिप सिंचाई विधि के साथ पलवार के प्रयोग से न केवल उपज में सुधार प्राप्त हुआ बल्कि 17 से 57% तक जल की बचत के अलावा 20–40% तक उर्वरक की बचत भी प्राप्त हुई और केले की फसल में लगभग 30–35 दिनों तक परिपक्वता को शीघ्र प्रेरित भी किया। इसी प्रकार, ड्रिप सिंचाई पद्धति + पलवार का एक साथ प्रयोग मृदा के स्वास्थ्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किये बिना खराब गुणवत्ता वाले जल का उपयोग करने में भी सक्षम साबित हो सकता है (तालिका 12)।

केले की फसल में ड्रिप सिंचाई पद्धति से सिंचाई

तालिका 12. सतही एवं ड्रिप सिंचाई विधियों के तहत पलवार के प्रयोग का फसलों की उपज एवं सिंचाई जल बचत पर प्रभाव

तकनीक	फसलें	सुझाई गई तकनीक	उपज में वृद्धि (%)	जल की बचत (%)	टिप्पणी
सतही सिंचाई विधि + पलवार	केला	गन्ना के अवशेष की पलवार (STM)	49	40	15 टन/हे अवशेष
	भिंडी	काली पोलिथीन पलवार (BP)	25	–	90 % तक खरपतवार नियंत्रण
	बैंगन	काली पोलिथीन पलवार	47	79	–
	गेंदा	गन्ना के अवशेष की पलवार	29	–	–
	अरंडी	गन्ना के अवशेष की पलवार	18	–	5 टन/हे अवशेष
ड्रिप सिंचाई विधि + पलवार	गुलाब	काली पोलिथीन पलवार	54	17	–
	बैंगन	गन्ना के अवशेष की पलवार /काली पोलिथीन	17	–	–
	स्मूद गौर्ड	गन्ना के अवशेष की पलवार	–	57	–
	केला	काली पोलिथीन पलवार	43	17	–
	केला	काली पोलिथीन पलवार	18		25 माइक्रोन प्लास्टिक

Sugarcane Trash Mulch (STM) : गन्ना के अवशेष की पलवार, Black Polythene (BP) : काली पोलिथीन पलवार

नई फसलों की पहचान

नहरी कमांड क्षेत्रों में जलाक्रांत की समस्या को कम करने के लिये यह बहुत जरूरी है कि कम जल की आवश्यकता वाली फसलों से अधिक जल माँग वाली गर्मी के मौसम के धान की फसल को बदला जाये जो समान रूप से लाभकारी भी हों। इस दिशा में इस केंद्र द्वारा पहले ही अरंडी (रबी), पाल्मारोसा, नाइजर (रबी), मूँग, लहसुन और गेंदा की फसलों को खेती के लिये सुझाव दिया गया है (तालिका 13)।

तालिका 13. कुछ संभावित फसलों की तुलनात्मक जल आवश्यकता एवं शुद्ध आय

फसलें	सिंचाई जल की आवश्यकता (मिमी)	उपज (टन/हे)	सकल आय (₹/हे)	शुद्ध आय (₹/हे)	जल उपयोग दक्षता (किग्रा/हे मिमी)
धान (गर्मी का मौसम)	1200–1400	4.0 – 5.0	25000	22000	3.46
अरंडी	320 – 380	2.5 – 3.0	50000	35000	7.14
गेंदा	600 – 650	6.5 – 7.5	20000	36000	11.67
नाइजर–मूँग फसल क्रम	360 – 420	0.6 – 1.3	44000	28000	2.22
लहसुन	620 – 680	6.0 – 7.0	180000	128000	10.48
पाल्मारोसा	570–810	269 किग्रा/हे तेल उपज	134550	87449	0.36
ताड़	1100–1300	11000	67000	18000	9.20
स्पाइडर लिली (फूल वाली फसल)	1100–1200	55 लाख कलियाँ/हे	221960	167400	–

कृषि के लिये जल निकास की व्यवस्था

जल निकास की व्यवस्था के लिये उप-सतह जल निकास तकनीक को विकसित किया गया है जिसे राज्य की नहरों के कमांड क्षेत्रों में आर्थिक रूप से व्यवहार्य पाया गया है। इस उप-सतह जल निकास तकनीक के लाभों को देखते हुए राज्य के कई किसान अपने खेत में इस तरह की जल निकास व्यवस्था को स्थापित कर रहे हैं ताकि उनको गन्ने की फसल से बेहतर लाभ मिल सके और साथ ही साथ उनके खेतों की मृदा के स्वास्थ्य में गिरावट को रोका जा सके।

राज्य के एक ब्लॉक में खुली उप सतह (169 हेक्टेयर) और बंद उप सतह जल निकास (188 हेक्टेयर) को अनुसंधान मोड पर संचालित किया गया। जल निकासी के लाभों को देखते हुए किसानों ने जिनके खेत जलाक्रांत और लवणता की समस्या से प्रभावित हैं। यहाँ के किसानों ने मार्गदर्शन के लिये इस केंद्र से संपर्क किया। इसके परिणामस्वरूप, नवसारी केंद्र के मार्गदर्शन में लगभग 250 हेक्टेयर क्षेत्र को बंद उप सतह जल निकास व्यवस्था के तहत लाया गया और इस प्रणाली की कुल लागत का भुगतान किसानों द्वारा खुद किया गया।

निष्कर्ष

वैसे तो गुजरात राज्य पर्याप्त जल संसाधनों के साथ संपन्न है लेकिन इनके विषम स्थानिक वितरण के कारण उत्तर गुजरात, कच्छ और सौराष्ट्र क्षेत्रों में जल की कमी की समस्या हो रही है और राज्य के दक्षिणी हिस्सों में अतिरिक्त जल भराव की स्थिति की समस्या बढ़ती जा रही है। नतीजतन राज्य में जल की खराब गुणवत्ता की स्थिति के साथ घटते एवं बढ़ते भूजल के स्तर की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। दोनों स्थितियों में दोषपूर्ण सिंचाई पद्धतियाँ जो कि सुझायी गई फसल पद्धतियों के गैर-अनुपालन के साथ मिलती है इसलिये, यह समस्या आगे बढ़ती ही जा रही है। इन दोनों समस्याओं से निपटने के लिये स्थिति-आधारित तकनीकें उपलब्ध हैं लेकिन फिर भी अच्छी तरह से योजनाबद्ध और निष्पादित जल प्रबंधन रणनीतियों के माध्यम से यहाँ आधुनिक जल प्रबंधन तकनीकों को ओर भी लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है। इसलिये, गुजरात राज्य में प्रचलित सिंचाई पद्धतियों के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिये स्थान विशिष्ट और कम सिंचाई जल उपयोग वाली उचित जल प्रबंधन रणनीतियों का सुझाव दिया गया है।

पूर्वी भारत के वर्षा आधारित क्षेत्रों में अनानास की खेती

ओ. पी. वर्मा, सोमनाथ राय चौधुरी, एम. रायचौधुरी एवं एस. के. अम्बष्ट
भाकृअनुप- भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर, ओडिशा

प्रस्तावना

पूर्वी भारत में 12.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र वर्षा आधारित धान की खेती के अंतर्गत है। इन वर्षा आधारित क्षेत्रों में अधिकांशत: भूमि वर्षा के बाद रबी मौसम में सिंचाई सुविधाओं की कमी के कारण मुख्य रूप से परती छोड़ दी जाती है। इस कारण इस भूमि का खेती के लिए उचित उपयोग नहीं हो पाता है। इसी प्रकार की समान परिस्थिति ओडिशा राज्य में भी मौजूद है। दूसरी तरफ धान की फसल के लिये रबी के मौसम में 3000 मिमी, मक्का की फसल के लिए 500 मिमी एवं सब्जियों को उगाने के लिये 800 मिमी जल की आवश्यकता पड़ती है जिनको आजकल सिंचाई जल की कमी की वजह से उगा पाना बहुत मुश्किल है। लेकिन इसके विपरीत आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण अनानास की फसल को बहुत कम जल की आवश्यकता होती है और जल की कमी की इसी वजह के कारण इन क्षेत्रों में इस फसल को आसानी से उगाया जा सकता है। अनानास की फसल में एक विशेष प्रकार का क्रेसुलेसियन एसिड मेटाबोलिज्म (CAM) तंत्र पाया जाता है जिसके कारण यह फसल कम सिंचाई जल का भी दक्ष उपयोग कर लेती है। इसी कारण की वजह से इसको जल उपयोगी दक्ष फसल भी कहा जा सकता है। ओडिशा राज्य एवं पूर्वी भारत के अन्य क्षेत्रों में सिंचाई जल की कम आवश्यकता के कारण अनानास की खेती की अनुकूलनशीलता बहुत अधिक प्रचलित है। यह फसल कम से कम सिंचाई जल पर भी जीवित रह सकती है या यूं कह सकते हैं कि इसमें सिंचाई जल देना या प्रयोग करना भी जरूरी नहीं है। यह केवल यह वर्षा जल से ही अपनी सिंचाई की आवश्यकता को पूरी कर सकती है। अत: खरीफ धान के बाद रबी के मौसम में जो भूमि परती रहती है उसमें इस 12 महीने से अधिक अवधि वाली अनानास की फसल को विभिन्न उचित सस्य प्रबंधन विधियों के साथ अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में मध्यम एवं ऊँची भूमि परिस्थितियों के तहत बहुत अच्छी तरह से उगाया जा सकता है।

खरीफ धान की फसल के बाद अनानास की खेती की विधि

इसमें सर्वप्रथम 500 गर्म वजन वाले सकर्स को पॉलीथीन बैग (5 किलो ग्राम मिट्टी क्षमता) में अप्रैल महीने के दौरान रोपित किया जाना चाहिये जिसमें रेत, सिल्ट एवं उर्वरकों के बेसल प्रयोग का मिश्रण भरा होता है। अनानास के पौधों की पॉलीथीन बैगों में तब तक वृद्धि होनी देनी चाहिये जब तक खरीफ धान की कटाई के बाद खेत तैयार हों जायें। धान की कटाई के बाद अच्छी तरह से जुताई द्वारा तैयार खेत में अनानास के पौधों का रोपण जिनकी वृद्धि लगभग 8 महीने तक पॉलीथीन बैग में हुई हो करना चाहिये। इन पौधों का रोपण मध्य दिसंबर तक कर देना सबसे अच्छा रहता है। इन पौधों का रोपण 60 सेमी ऊँची उठी हुई क्यारी में करना अच्छा रहता है जिससे खेत में जल भराव की समस्या नहीं आती है। इस फसल में विभिन्न सस्य प्रबंधन विधियों को भी उपचार के रूप में अपनाया जाता है जैसे कि पौधे की पुरानी पत्तियों को हटाना, पुराने सकर्स को हटाना, कोई उपचार नहीं, 50 पीपीएम की दर से पौधों में प्लानोफिक्स का छिड़काव एवं पौधों को छायादार स्थान पर उगाना आदि। इन सभी प्रबंधन विधियों से अनानास के पौधों की वृद्धि एवं विकास अच्छा होता है।

जब सभी पौधों में 40 पत्तियाँ आ जाये या लगभग 50 दिनों के रोपण के बाद पौधों में शीघ्र फूल लाने के लिये एथेफोन हार्मोन का प्रयोग करना चाहिये। इसके लिये एक मिश्रण बनाया जाता है जिसमें 2% यूरिया, 0.04% केल्सियम कार्बोनेट एवं 20 पीपीएम एथेफोन हार्मोन होता है। इस मिश्रण के 50 मिली लीटर घोल को प्रति पौधे में पौधे के बीच वाले भाग में जहाँ से फूल आने हैं वहाँ प्रयोग किया जाता है। इस हार्मोन के प्रयोग के 30 दिन बाद फूल आने शुरू हो जाते हैं। सही समय पर सही मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग भी महत्वपूर्ण होता है। खेत में से खरपतवारों का नियंत्रण भी सही समय पर करना उचित है। हार्मोन प्रयोग के लगभग 135-150 दिन बाद अनानास की फसल के फल पक जाते हैं और उनकी कटाई की जा सकती है। इस प्रकार इस विधि से धान-अनानास फसल पद्धति को अपनाकर हम खरीफ धान की उपज (4 टन/हेक्टेयर) भी प्राप्त कर सकते हैं साथ ही साथ 17 टन प्रति हेक्टेयर के रूप में अनानास की फल उपज भी प्राप्त कर सकते हैं। अत: किसानों की आय में दोगुनी वृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये यह एक बहुत ही अच्छी तकनीक साबित हो सकती है।

पॉलीथीन बस्तों में अनानास की वृद्धि

खेत में अनानास का रोपण

अनानास की फसल में हार्मोन का छिड़काव

खेत में अनानास के पौधों को आंशिक छाया उपचार

निष्कर्ष

वर्तमान में किये गये अनुसंधान के तथ्य यह दर्शाते हैं कि पूर्वी भारत विशेषतया ओडिशा में अनानास की फसल उगाने वाले किसान आजकल कई समस्याओं का सामना कर रहे हैं जैसे रसायन और जैव उर्वरकों की उच्च लागत, वित्तीय सहायता की कमी, श्रम की अधिक लागत, उपजाऊ भूमि की अनुपलब्धता, फसल में फूलों के आने की अनियमितता आदि। अत: उत्पादकों को उर्वरकों के अतिरिक्त और असंतुलित प्रयोग से बचाने एवं उचित समय पर हार्मोन के छिड़काव के लिये शिक्षित होने पर जोर दिया जाना चाहिये। इसके साथ ही खेती की आधुनिक तकनीक के अनुसार अनानास की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिये कोशिश करनी चाहिए।

वर्षा जल संचयन एवं इसका बहुआयामी उपयोग तथा प्रबंधन

◆◆◆

आर.सी. तिवारी एवं बी.एन. सिंह
सिंचाई जल प्रबंधन योजना
नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद, उत्तरप्रदेश

प्रस्तावना

जल हमारे जीवन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग है। जल के बिना जीवन निर्वाह संभव नहीं है। जल की आवश्यकता जितनी मानव के लिए आवश्यक है उतनी ही पौधों के लिए भी आवश्यक है। फसलों एवं पौधों का लगभग 70-90 प्रतिशत भाग जल का ही बना होता है। पौधे सदैव अपना भोजन मृदा से घोल के रूप में जल के माध्यम से ही लेते हैं या ग्रहण करते हैं। अत: कृषि उत्पादन में जल की बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सिंचित स्थिति की तुलना में असिंचित स्थिति में उगाई गई फसलों की पैदावार लगभग आधी ही प्राप्त होती है जिससे किसानों को कृषि में भारी नुकसान का सामना करना पड़ता है। देश के उत्तरप्रदेश राज्य में औसतन वर्षा लगभग 1000 मिलीमीटर ही प्राप्त होती है जिसका अधिकांश भाग भूमि की ऊपरी सतह से बहकर नदी एवं नालों में बह जाता है जिसका मुख्य कारण उचित जल सरंक्षण एवं प्रबंधन का ना होना है। इसलिये, कृषि से अधिक आय प्राप्त करने तथा कृषि को एक व्यवसाय के रूप में अपनाने के लिये किसानों को जल की महत्ता को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

तालिका 14 वर्षा जल संचयन एवं इसके बहुआयामी उपयोग के परिणाम

फसल प्रणाली		उपज (किग्रा/ प्लॉट)			उत्पादन लागत (₹)	कुल आय (₹)	शुद्ध लाभ (₹)	लाभः लागत अनुपात
		खरीफ	रबी					
			मुख्य फसल	अंत:फसल				
अ-परंपरागत फसल प्रणाली								
धान-गेहूँ:सरसों	1 हेक्टेयर	4331	3749	366	48250	125638	77388	1.60
ब-एकीकृत फसल प्रणाली								
धान-चना: सरसों (4:1)	0.25 हे	1201	359	178	11700	36804	25104	2.40
धान-मटर: सरसों (2:2)	0.25 हे	1227	268	212	11200	30685	19485	
धान-गेहूँ: सरसों (9:1)	0.25 हे	1209	1067	112	12750	35713	22963	
मछली पालन, बतख पालन	0.25 हे	मछली-531 अंडे-3336			10000 4200	53100 16680	42100 9700	
कुल	1 हेक्टेयर				50850	172982	122132	

विक्रय मूल्य: धान- ₹ 13.50/किग्रा, गेहूँ- ₹ 14.50/किग्रा, सरसों- ₹ 35/किग्रा, चना- ₹ 40/किग्रा, मटर- ₹ 25/किग्रा, मछली- ₹ 100/किग्रा एवं अंडा- ₹ 60/दर्जन

उत्तरप्रदेश राज्य में लगभग 70 प्रतिशत कृषि वर्षा जल पर आधारित है जिसमें पूर्वी उत्तरप्रदेश में 67% तथा बहराइच, गोंडा एवं सिद्धार्थनगर जैसे जनपदों में 97.25 प्रतिशत कृषि वर्षा जल पर आधारित है। जहाँ कृषि वर्षा जल पर ही आधारित है वहाँ किसान वर्ष में केवल एक फसल या उसके साथ ऊटीरा (खरीफ मौसम की खड़ी फसल में रबी मौसम में उगने वाली मसूर या कम जल आवशयकता वाली अन्य फसलें) की फसल प्राप्त की जाती है। अत: ऐसे क्षेत्रों में वर्षा जल का संचयन करके तथा उसका सिंचाई के लिए उपयोग कर फसलों के उत्पादन में वृद्धि कर सकते हैं। इसके लिये गाँवों में ग्रामीणों के माध्यम से नए तालाबों का विकास और पुराने तालाबों का पुन:निर्माण किया जा सकता है। वर्षा जल को तालाबों में उचित तरीके से एकत्रित करने से मृदा क्षरण में कमी एवं मृदा की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है। तालाबों में जल एकत्रित करने से पुन:भरण द्वारा भूजल में भी वृद्धि होती है जिससे भूजल में कमी होने पर पीने के जल की समस्या का सामना किया जा सकता है। तालाबों में वर्षा जल को एकत्रित कर अन्य कार्यों में जैसे मछली एवं बतख पालन करके माँस एवं अंडों के उत्पादन में वृद्धि कर किसानों की आय में वृद्धि की जा सकती है। इसके साथ ही साथ तालाबों के जल का रबी मौसम की फसलों में जीवन रक्षक सिंचाई के रूप में उपयोग किया जा सकता है जिससे फसलों की पैदावार में वृद्धि होगी। तालाबों में वर्षा जल के अतिरिक्त जब नहरों में जल अधिक रहता है तब नहरों के जल को इन तालाबों में संचित कर सकते हैं।

विश्वविद्यालय द्वारा चाँदपुर रजबहा पर किसानों के खेतों पर सिडहीर एवं सरैया गाँवों में मनरेगा के माध्यम से पुराने तालाबों का पुन:निर्माण करवाया गया तथा वर्षा जल का संचयन कर तालाबों के नजदीकी क्षेत्रों में पारंपरिक पद्धति से धान–गेहूँ/सरसों फसल प्रणाली की जगह रबी में धान आधारित एकीकृत फसल प्रणाली के अंतर्गत मटर: सरसों (2:2), चना:सरसों (4:1) एवं गेहूँ:सरसों जैसी फसल पद्धतियों पर अनुसंधान करके इनको वहाँ पर अपनाने की सलाह दी गयी तथा नहर का जल उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में तालाब के जल से आवश्यकतानुसार एक या दो सिंचाई दी गयी। इसी के साथ तालाब में मछली एवं बतख पालन किया गया जिससे बहुत ही लाभकारी परिणाम प्राप्त हुये। इस अनुसंधान के परिणाम तालिका 14 में प्रस्तुत किए गए हैं।

वर्षा जल का संरक्षण करके मछली एवं बतख पालन तथा एकीकृत फसल उत्पादन में जल के बहुआयामी उपयोग

उपरोक्त परिणामों से यह स्पष्ट है कि एक हेक्टेयर खेत में किसानों द्वारा उन्हीं के खेत पर परंपरागत एवं उन्नतशील तरीके (एकीकृत कृषि प्रणाली) से फसलों का उत्पादन किया गया जिसके परिणामस्वरूप एकीकृत कृषि प्रणाली अधिक उत्पादक एवं लाभकारी पायी गयी। एकीकृत कृषि प्रणाली के साथ वर्षा जल संचयन कर मछली एवं बतख पालन से किसानों को ₹ 172982/हे/वर्ष की कुल आय प्राप्त हुई जो पारंपरिक कृषि प्रणाली की तुलना में 37.68 प्रतिशत अधिक पायी गयी एवं किसानों को ₹ 122132/हे/वर्ष का शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ जो पारंपरिक कृषि प्रणाली की तुलना में ₹ 44744/हे/वर्ष अधिक प्राप्त हुआ। इसके अलावा वर्षा जल का संचयन करने से पुन:भरण द्वारा भूजल के स्तर में भी वृद्धि हुई। इस प्रकार नहरी कमांड क्षेत्रों में केवल वर्षा जल का संचयन करके एकीकृत कृषि प्रणाली को अपनाने से किसानों की आय को लगभग 1.57 गुना बढाया जा सकता है जो भारत/राज्य सरकार की मंशा किसानों की आय को दोगुना करने में सहायक साबित हो सकती है।

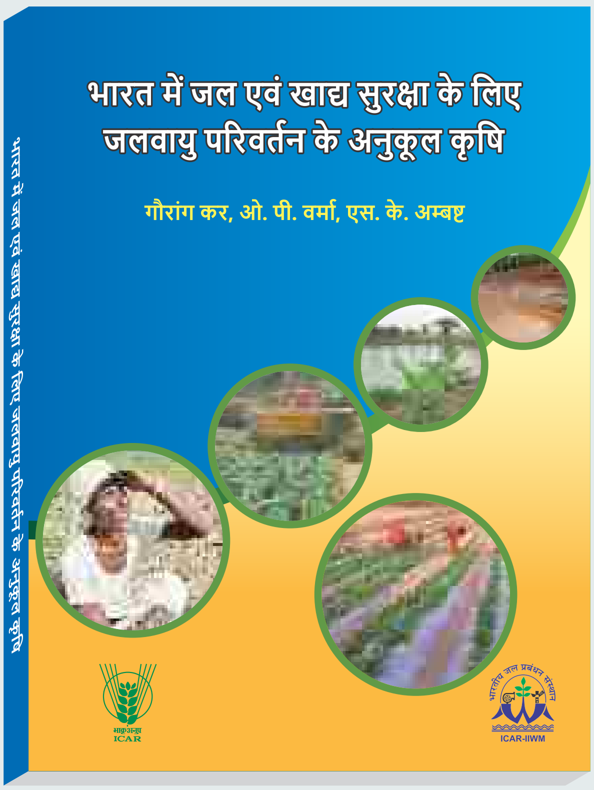

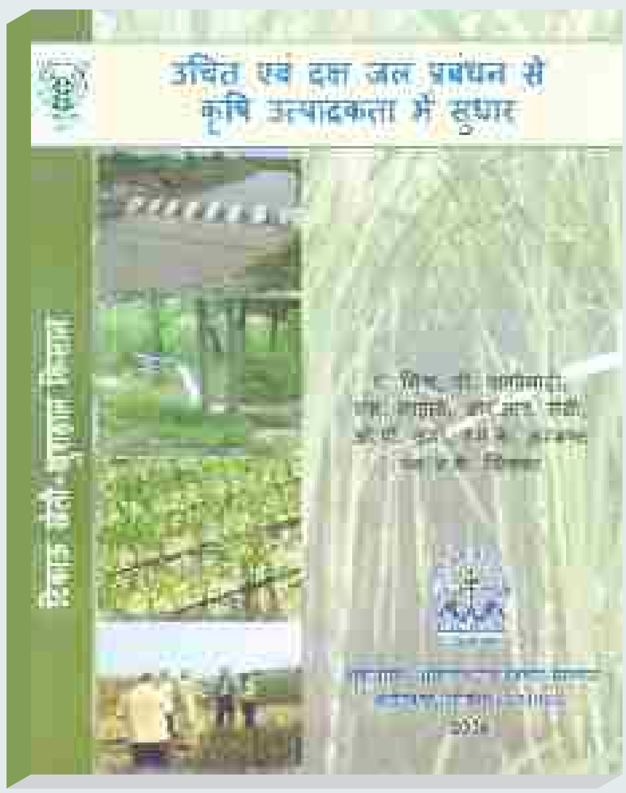

पैन वाष्पीकरण मीटर: सिंचाई के उपयुक्त समय के निर्धारण हेतु एक उपयोगी उपकरण

एन. मणिकंडन, एस. प्रधान, पी. पानीग्राही, एस.के. राउतराय एवं जी. कर
भाकृअनुप – भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर, ओडिशा

प्रस्तावना

जब वर्षा और मृदा में संचित नमी फसलों की पैदावार बढ़ाने/ स्थिर करने के लिये पर्याप्त नहीं होती है तब फसलों की जल की माँग को पूरा करने के लिये सिंचाई बहुत ही आवश्यक है। कृषि उद्देश्यों के लिये जल संसाधनों की उपलब्धता तेजी से घट रही है क्योंकि अन्य क्षेत्रों से प्रतिस्पर्धायें दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही हैं। हमारे देश में वर्ष 2025 और वर्ष 2050 तक सतह जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता क्रमश: 1401 घन मीटर और 1191 घन मीटर हो जाएगी जो वर्ष 1991 में 2309 घन मीटर थी (कुमार एट आल, 2005)। यह अनुमान लगाया गया है कि मीठे पानी के संसाधनों को बढ़ाने की गुंजाइश कम हो रही है अत: ताजे जल की उपलब्धता की घटने की समस्या को हल करने के लिये जल के उपयोग को दक्षतापूर्वक बढ़ाने की अत्यंत आवश्यकता है। सिंचाई के जल का अनुचित उपयोग उदाहरण के लिये जैसे जल का अतिरिक्त उपयोग जल, ऊर्जा और श्रम में अपव्यय का कारण बन जाता है जिससे मृदा वातन, पौधों के जड़ क्षेत्र से पौषक तत्वों की मात्रा में कमी आ जाती है जिसके परिणामस्वरूप फसलों की उपज प्रभावित होती है। इसी प्रकार सिंचाई के जल की कमी पौधों में जल और पौषक तत्व तनाव के द्वारा उपज पर प्रभाव डालती है। इस संदर्भ में उपलब्ध जल संसाधनों का प्रभावी उपयोग करने के लिये वैज्ञानिक सिंचाई के समय का निर्धारण किसानों को बहुत सहायता कर सकता है। एक ऐसा उपकरण जो वाष्पीकरण को मापने के साथ साथ मौसम के कारकों के प्रभाव को भी एकीकृत करता हो सिंचाई समय के निर्धारण के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका मौसम ब्यूरो (USWB) का वाष्पीकरण पैन जल की विशिष्ट खुली सतह से वाष्पीकरण माप पर सौर विकिरण, तापमान, हवा की गति और उमस का सामूहिक प्रभाव प्रदान करता है। अन्य पैन के मुकाबले इसके बेहतर प्रदर्शन के चलते इस पैन को आज भी पूरे विश्व में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जा रहा है।

संयुक्त राज्य अमेरिका मौसम ब्यूरो (USWB) का वाष्पीकरण पैन

सिंचाई जल/ संचयी पैन वाष्पीकरण (IW/CPE) अनुपात

यह दृष्टिकोण निश्चित सिंचाई जल की मात्रा और संचयी पैन वाष्पीकरण की मात्रा के अनुपात पर आधारित था जिसको खेत स्तर पर अधिक प्रायोगिक माना गया है (प्राइटर एट आल, 1974)। उन्होनें गेहूँ की फसल में सिंचाई के समय का निर्धारण करने के लिये इस तकनीक को उपयोग में लाने का प्रयास किया और यह निष्कर्ष निकाला कि उपज में बिना किसी हानि के सिंचाई जल की गहराई/संचित पैन वाष्पीकरण (IW/CPE) अनुपात के आधार पर सिंचाई के समय निर्धारण के अनुसार सिंचाई के जल का उचित उपयोग करना एक बहुत ही व्यावहारिक तरीका है। भारत में विभिन्न फसलों में सिंचाई के समय के निर्धारण के लिये IW/CPE अनुपात (यूएसडब्ल्यूबी क्लास ए पैन का

उपयोग कर) के प्रयोग को कई अनुसन्धानों के साहित्य में वर्णित किया गया है। फिलहाल वाष्पीकरण पैन की अधिक लागत, बडे ़आकार, रखरखाव और दैनिक माप में मुश्किल आदि इसकी व्यावहारिक उपयोगिता के लिये किसानों के स्तर पर कुछ कमियां हैं। इसलिये, इस उपकरण को और अधिक व्यावहारिक बनाने के लिये राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर छोटे आकार के वाष्पीकरण मीटरों को विकसित करने के लिये कई प्रयास किये गये हैं।

छोटे आकार के वाष्पीकरण मीटर के साथ प्रयोग

शर्मा एट अल, 1975 ने अलग–अलग रंगों (काला, एल्यूमीनियम और सफेद) के साथ मेष स्क्रीन सहित कवर किये गये वाष्पीकरण मीटर (10.3 सेमी व्यास और 14.3 सेमी की ऊँचाई के साथ प्लास्टिक का पैन) का उपयोग किया। पैन वाष्पीकरण मीटर को रिम के नीचे से 1.5 सेंटीमीटर तक जल से भर दिया गया और इसको भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में फसल की ऊँचाई और फसल की ऊँचाई से 30 सेंटीमीटर ऊपर तक गेहूँ के खेत में रखा गया। उन्होंने इस उपकरण के वाष्पीकरण आँकड़ों, यूएसडब्ल्यूबी क्लास–ए पैन और गेहूँ के खेत में वास्तविक वाष्पोत्सर्जन (ET) जो कि मृदा की नमी के रिकॉर्ड प्राप्त हुआ था की तुलना एक साथ की गयी। इस अनुसंधान के परिणामों ने बताया कि दोनों एल्यूमीनियम और सफेद रंग के वाष्पीकरण मीटर जो कि फसल की ऊँचाई तक रखे गये थे ने मृदा में नमी की कमी द्वारा आकलित वास्तविक वाष्पोत्सर्जन (ET) के साथ सबसे अच्छा संबंध दर्शाया।

टॉरेस (1998) ने कोलंबिया में सफेद बेलनाकार प्लास्टिक की बाल्टी (0.30 मीटर व्यास और 0.40 मीटर ऊँचाई) के उपकरण का उपयोग करके गन्ने की फसल

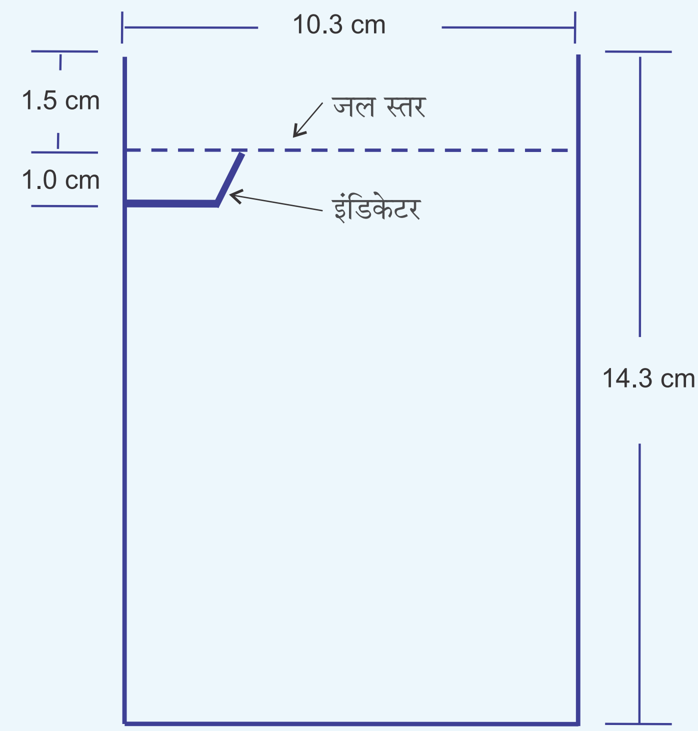

पैन वाष्पीकरण

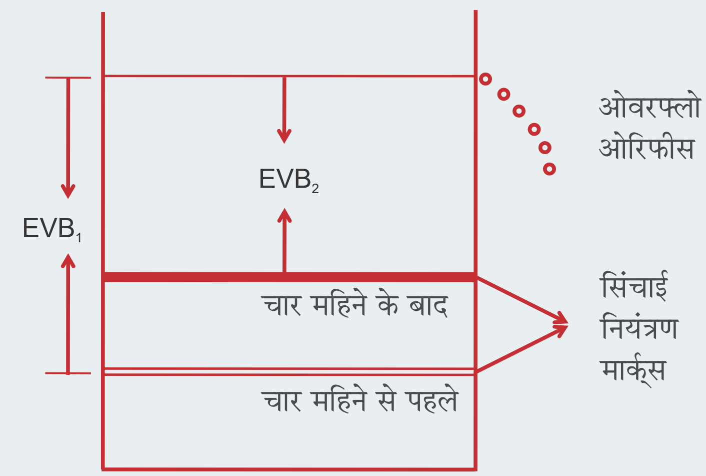

निर्धारण बाल्टी

में सिंचाई के समय के निर्धारण के लिये प्रयोग किया। बाल्टी से प्राप्त वाष्पीकरण का मूल्य क्लास–ए पैन वाष्पीकरण मीटर से प्राप्त मूल्य की तुलना में 9% अधिक था। उन्होंने चार सिंचाई के समय निर्धारण के उपचारों अर्थात् किसानों के अनुभव पर आधारित वाणिज्यिक सिंचाई, दैनिक जल संतुलन गणना, जल बजट की दो बार साप्ताहिक गणना और कैलिब्रेटेड प्लास्टिक की बाल्टी के साथ खेत में परीक्षण भी किया। इस प्रयोग के परिणाम में 12% अधिक गन्ना और चीनी उपज प्राप्त हुई और किसान वाणिज्यिक सिंचाई उपचार की तुलना में चार सिंचाईयों को छोड़ सकता है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि केलिब्रेसन के बाद शेड्यूलर बाल्टी का अलग–अलग फसलों में सिंचाई के जल को बचाने के लिये इस्तेमाल किया

जा सकता है और कम जल के साथ अधिक उपज प्राप्त करने के लिये भी इसको उपयोग में लिया जा सकता है।

ऑस्ट्रेलिया में क्वींसलैंड राज्य के बरडेकीन और बुंडाबर्ग जिलों में, एक छोटे पैन वाष्पीकरण मीटर (200 लीटर की क्षमता वाले प्लास्टिक ड्रम का आधा भाग) का गन्ने की फसल में सिंचाई के समय का निर्धारण के लिये इस्तेमाल किया गया (होल्डन एट आल, 1997)। यह पद्धति समय संचयी वाष्पीकरण पर आधारित है जहाँ इस तकनीक में दर्ज की गई अधिकतम दर 50% से डंठल विकास दर में गिरावट और मिनी पैन से वाष्पीकृत जल की गहराई जो मृदा में नमी की कमी को दर्शाती है। उन्होंने देखा कि छोटे पैन वाष्पीकरण मीटर द्वारा दर्ज वाष्पीकरण यूएसडब्ल्यूबी क्लास ए पैन से 15% अधिक था। बरडेकीन और बुंडाबर्ग जिलों के मिनी पैन उपयोगकर्ताओं की जल उपयोग दक्षता में क्रमशः 0.5 टन/मिलीलीटर (7.8–8.3 टन/ मिलीलीटर) और 0.9 टन/मिलीलीटर (9.6–10.5 टन/मिलीलीटर) की वृद्धि प्राप्त हुई। उन्होंने बताया कि जहाँ सिंचाई के समय के निर्धारण के अन्य उपकरण विफल हो गये हों ऐसी स्थिति में कुछ कारकों जैसे आसानी, समझने व उपयोग करने में आसान आदि ने गन्ना की फसल में सिंचाई के समय का निर्धारण करने के लिये मिनी पैन को सफलतापूर्वक

मिनी वाष्पीकरण पैन

यूजीए इजी सिंचाई निर्धारक

चाइनीज 20 सेमी पैन

अपनाने के लिये प्रेरित किया। शैनन और राइन (1996) ने बताया कि गैर उपयोगकर्ताओं की तुलना में गन्ने की फसल में सिंचाई के समय का निर्धारण करने के लिये पैन वाष्पीकरण मीटर के उपयोग से 10 से 47% तक जल के उपयोग को बचाया जा सकता है।

थॉमस एट अल, (2004) ने अमेरीका के जॉर्जिया विश्वविद्यालय के टिफ्टन कैम्पस में एक साधारण, कम लागत और कम आकार वाले पैन सिंचाई निर्धारक (अंजीर 5) की डिजाइन बनाई जिसको यूजीए ईएएसवाई (यूनिवर्सिटी ऑफ जॉर्जिया–इवेपोरेसन बेस्ड एक्यूमिलेटर

फॉर स्प्रिंकलर एनहांस्ड यील्ड) नाम दिया गया। यह पैन सिंचाई निर्धारक 65 लीटर क्षमता के साथ गेल्वेनाइज्ड लोहे से बनाया गया था। शीर्ष का व्यास, तल का व्यास और पैन वाष्पीकरण मीटर की ऊँचाई क्रमशः 61 सेमी, 52 सेमी और 28 सेमी रखी गई थी। इस सिंचाई निर्धारक का वजन लगभग 2.5 किलोग्राम था। उन्होने इसको अधिक दूरी वाली फसलों के साथ छिडक़ाव सिंचाई के प्रयोगों के तहत इस्तेमाल किया और उन्होंने बताया कि इस इकाई ने टिफ्टन की दोमट रेतीली मृदा में अच्छा प्रदर्शन दिखाया।

चीन में वाष्पीकरण को मापने के उद्देश्य के लिये चीनी पैन (20 सेमी व्यास वाला स्टेनलेस स्टील से बना पैन, मोटाई 5 मिमी, गहराई 11 सेमी, वजन 2 किलोग्राम, स्टेनलेस स्टील धातु के स्क्रीन से ढक्का हुआ) का इस्तेमाल किया गया। और यह बताया गया कि इस 20 सेमी पैन के बहुत फायदे हैं जैसे कि इसका छोटा आकार, परिवहन में आसानी, कम लागत और माप में आसानी (लियू व कांग, 2007) आदि। चीन में कई शोधकर्ताओं ने बहुत सी फसलों हेतु सतही, ड्रिप और छिडक़ाव जैसी विभिन्न सिंचाई विधियों में सिंचाई के समय के निर्धारण के लिये इस 20 सेमी पैन का प्रयोग किया। इन अध्ययनों के परिणामों से पता चला कि चीनी पैन से मापा गया वाष्पीकरण लाइसीमीटर के उपयोग से मापे गये वास्तविक वाष्पोत्सर्जन (ET) के लगभग समान ही था और इसे सिंचाई जल की उपयोग दक्षता को बढ़ाने के लिये सिंचाई के समय के निर्धारण के प्रयोजन हेतु आसानी से किसानों द्वारा उपयोग में लिया जा सकता है।

निष्कर्ष

आने वाले दिनों में सिंचाई जल का दक्ष प्रयोग एवं प्रति जल बूंद के उपयोग से अधिक फसल उत्पादन प्राप्त करना बहुत ही अनिवार्य हो गया है क्योंकि जल की उपलब्धता और इसकी गुणवत्ता दिन-प्रतिदिन कम होती ही जा रही है। यधपी, सिंचाई के समय के निर्धारण के लिये बहुत सी कई वैज्ञानिक पद्धतियाँ/उपकरण उपलब्ध हैं लेकिन तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता के कारण किसानों के स्तर पर यह सब असफल ही रहे हैं। हालांकि, उपर्युक्त प्रयोगों के परिणामों से यह समझा जा सकता है कि किसानों के लिये छोटे आकार के वाष्पीकरण मीटर का उपयोग बहुत ही आसान है ताकि उपज में बिना किसी हानि के जल की बचत करने के लिये उनके खेतों में वैज्ञानिक आधार पर सिंचाई समय के निर्धारण को अपनाया जा सके।

संदर्भ

होल्डन, जे.आर., हसी, बी. और शैनन, ई.एल. 1997. ऑस्ट्रेलियाई गन्ना उत्पादकों द्वारा दक्ष टिकाऊ सिंचाई पद्धतियों को अपनाने में वृद्धि। एसआरडीसी परियोजना बीएस 127एस की अंतिम रिपोर्ट (जल की जाँच), बीएसईएस प्रकाशन, पृष्ठ 32 ।

कुमार, आर., सिंह, आर.डी., और शर्मा, के.डी. 2005. भारत के जल संसाधन। करंट साइंस, 89 (5): 794-811 ।

लियू, है-जून और कांग, वाई. 2007. उत्तरी चीन के मैदानों में 20 सेंटीमीटर आकार के मानक पैन का उपयोग करते हुए सर्दियों के मौसम की गेहूँ की फसल में सिंचाई समय का निर्धारण। इरीगेसन साइंस, 25: 149-159 ।

परिहार, एस.एस., खेड़ा, के.एल., संधू, के.एस. और संधू, बी.एस. 1976. शीतकालीन गेहूँ में पैन वाष्पीकरण और वृद्धि अवस्थाओं के आधार पर सिंचाई के स्तरों की तुलना। एग्रोनोमी जर्नल, 68: 650-653 ।

शर्मा, एच.सी., दास्ताने, एन.जी. और सिंह, एन.पी. 1975. खेत की फसलों से वाष्पोत्सर्जन (ET) के संबंध में कैन वाष्पीकरण पर अध्ययन। इंडियन जर्नल ऑफ एग्रोनोमी, 20 (2): 147-152 ।

थॉमस, डी.एल., हैरिसन, के.ए. और हुक, जे.ई. 2004. यूजीए पैन के साथ छिडक़ाव सिंचाई के समय का निर्धारण: प्रदर्शन विशेषतायें। एप्लाइड इंजीनियरिंग एंड एग्रीकल्चर, 20 (4): 439-445 ।

टॉरेस, जे.एस. 1998. गन्ने की फसल में सिंचाई के उपयुक्त समय के निर्धारण के लिये एक सरल विजुअल एड। एग्रीकल्चरल वाटर मेनेजमेंट, 38: 77-83 ।

मृदा प्रबंधन द्वारा जल उपयोग दक्षता में सुधार हेतु तकनीकी विकल्प

मधुमंती साहा[1], अभिजीत सरकार[2], त्रिशा रॉय[3] एवं पार्थ देबरॉय[2]

[1]भाकृअनुप – केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, पश्चिम बंगाल
[2]भाकृअनुप –भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर
[3]भाकृअनुप –भारतीय मृदा और जल संरक्षण संस्थान, देहरादून

प्रस्तावना

कृषि उत्पादन के लिये जल सबसे महत्वपूर्ण इनपुट है। हमारे देश में मानसून की अनियमितता और अति भूजल दोहन के कारण इसके स्तर में गिरावट के परिणामस्वरूप कृषि के उपयोग के लिये ताजे जल की आपूर्ति की कमी हो रही है। अत: आने वाले समय में इस अमूल्य संसाधन हेतु दक्ष उपयोग की आवश्यकता है। मानव आबादी द्वारा जल उपयोग की बढ़ती माँग और बेहतर पर्यावरणीय गुणवत्ता की वजह से फसलों की जल उपयोग की दक्षता में वृद्धि वर्तमान में चिंता का एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा उभर कर सामने आ रहा है। इसलिये, जल की कमी वाले क्षेत्रों में अधिक फसल उत्पादन प्राप्त करने के लिये जल के प्रभावी प्रबंधन के दक्ष दृष्टिकोणों को अपनाना बहुत ही आवश्यक हो गया है। जहाँ सिंचाई जल संसाधन सीमित हैं या कम हो रहे हैं और जहाँ वर्षा एक सीमित कारक है वहाँ फसलों की जल उपयोग दक्षता में वृद्धि करना एक विशेष रूप से महत्वपूर्ण विचारणीय विषय है। वैसे कुछ महत्त्वपूर्ण मृदा प्रबंधन पद्धतियाँ उपलब्ध हैं जो उपलब्ध ऊर्जा, मृदा की प्रोफाइल में उपलब्ध जल या मृदा और वातावरण के बीच की विनिमय दर को संशोधित करके वाष्पीकरण की प्रक्रियाओं को प्रभावित करती हैं। कृषि साहित्य के एक सर्वेक्षण से पता चला है कि जलवायु, फसल और मृदा प्रबंधन उपायों की एक विस्तृत श्रृंखला के अनुसार मापी गयी जल उपयोग दक्षता में काफी बदलाव देखे गए हैं। मृदा प्रबंधन उपायों के जरिये जल उपयोग दक्षता में 25 से 40% तक की वृद्धि संभव हो सकती है। इसके अलावा, ऊर्जा की कीमतों में हाल ही में हुई बढ़ोतरी से कई सिंचित उत्पादक पूछने लग गये हैं कि उनके जल संसाधनों की दक्षता को अधिकतम प्राप्त करने के लिये इस अमूल्य इनपुट का दक्ष प्रबंधन कैसे किया जाये? अत: इस तकनीकी लेख में मृदा प्रबंधन के उपायों द्वारा जल उपयोग दक्षता में वृद्धि हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

जल उपयोग दक्षता

जल उपयोग दक्षता एक निश्चित बायोमास स्तर को बताती है जो सिंचित और वर्षा आधारित कृषि दोनों के लिये जल संसाधनों की उपलब्धता के बारे में प्रतिदिन की चिंता का विषय है। इसलिये, फसलों द्वारा उपयोग किये गये जल की मात्रा को जल उपयोग दक्षता के रूप में मूल्यांकित किया जाता है। इस जल उपयोग दक्षता को निम्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. फसल की जल उपयोग दक्षता: इसको फसल की पैदावार एवं फसल की वाष्पोत्सर्जन (ऊं) आवश्यकता को पूरा करने के लिये उपयोग में लिये गये जल की मात्रा के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

फसल की जल उपयोग दक्षता = पैदावार/वाष्पोत्सर्जन (ET)

2. खेत की जल उपयोग दक्षता: यह फसल की पैदावार एवं खेत में उपयोग किये जाने वाले जल की कुल मात्रा का अनुपात होता है।

खेत की जल उपयोग दक्षता = पैदावार/जल आवश्यकता

3. फिजियोलोजिकल जल उपयोग दक्षता: इसको प्रति इकाई वाष्पोत्सर्जित जल के साथ कार्बन डाई ऑक्साइड के स्थिरीकरण की मात्रा के रूप में आकलित किया जाता है।

फिजियोलोजिकल जल उपयोग दक्षता = प्रकाश संश्लेषण की दर/ वाष्पोत्सर्जन की दर

मृदा में नमी के संरक्षण के लिये जुताई का महत्व

पौधों के लिये उपलब्ध मृदा जल की मात्रा मृदा की गहराई से नियंत्रित होती है जो पौधों की जड़ों के लिये आवश्यक है। इसके अलावा यह उपलब्ध जल मृदा पदार्थ की प्रकृति से भी नियंत्रित होता है। क्योंकि कुल और उपलब्ध नमी भंडारण क्षमता, वातन, कण आकार (बनावट) और कणों की व्यवस्था (संरचना) के साथ जुड़ी हुई होती है जो ये सभी महत्वपूर्ण कारक हैं। कार्बनिक पदार्थ, कार्बोनेट का स्तर, और पत्थर की सामग्री आदि भी मृदा में नमी के संग्रहण को प्रभावित करते हैं। खराब संरचना, कम कार्बनिक पदार्थ, कम कार्बोनेट सामग्री और पत्थरों की उपस्थिति आदि किसी भी बनावट की वर्ग वाली मृदा में नमी भंडारण क्षमता को कम करते हैं। चिकनी मृदा बड़ी मात्रा में जल को ग्रहण करती है परन्तु

क्योंकि इसमें अधिक विल्टिंग पॉइंट्स होते हैं तो इन्हें पौधों को जल की आपूर्ति करने में सक्षम होने के लिये वर्षा की आवश्यकता होती है। दूसरी तरफ, रेतीली मृदा में जल की भंडारण क्षमता सीमित होती है, लेकिन क्योंकि इनमें अधिकतर जल उपलब्ध रहता है जिसके कारण पौधे हल्की वर्षा का भी अच्छे से उपयोग कर लेते हैं चाहे वे वर्षा होने के पहले कितने भी शुष्क हो। पौधे आम तौर पर रेतीली मृदा में एक अच्छी प्रकार की जड़ प्रणाली रखते हैं ताकि रेतीली मृदा के सूखने से पहले जल्दी से जल इनकी जड़ों तक पहुँच सकें।

मृदा के स्वास्थ्य, पौधों की वृद्धि और पर्यावरण की देखभाल करने के लिये सरंक्षित जुताई सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। सरंक्षित जुताई के तहत मृदा की नमी की अधिक मात्रा मृदा की संरचना में सुधार और निरंतर फसल के अवशेषों के तहत वाष्पीकरण के नुकसान में कमी के कारण होती है। सरंक्षित जुताई के तहत उपलब्ध नमी की मात्रा में वृद्धि विशेष रूप से सतही मृदा में फसलों द्वारा जल के उपभोगित उपयोग में वृद्धि करती है जिसके परिणामस्वरूप जल उपयोग दक्षता में सुधार प्राप्त होता है।

मृदा में नमी के संरक्षण के लिये विभिन्न तकनीकी विकल्प

किसानों द्वारा कृषि के तहत अपने खेतों की मृदा में नमी का संरक्षण विभिन्न आधुनिक एवं उन्नत तकनीकों के विकल्पों को अपनाकर किया जा सकता है जिनका विवरण विस्तार से नीचे प्रस्तुत किया गया है।

स्ट्रिप खेती

इसमें वैकल्पिक स्ट्रिप्स के तहत क्षरण प्रतिरोधी फसलों एवं क्षरण को बढावा देने वाली फसलों की कुछ पंक्तियों को भूमि के लंबे और खड़े ढ़लानों को तोडने के उद्देश्य से समोच्च (ढ़लान पार) पर उगाया जाता है। इस तकनीक के तहत बहुत कम दूरी पर बुआई वाली क्षरण प्रतिरोधी फसलें वर्षा अपवाह में बाधा डालकर एवं छनित तलछट या अवसादों को खेत में ही छोड़कर मृदा की संवहन एवं क्षरण क्षमता को कम कर देती हैं। क्षरण को बढ़ावा देने एवं क्षरण प्रतिरोधी फसलों की चौड़ाई अलग अलग क्षेत्रों के ढ़लान के अनुसार बदलती रहती है। स्ट्रिप खेती एक तरह से फसलों के अंतरसस्य जैसे दिखाई देती है।

कंटूर खेती

इस विधि में ऊपर और नीचे के ढलान के बजाय भूमि के एक ही ढ़लान के सहारे खेती की गतिविधियां (जुताई, रोपण, खेती एवं फसल कटाई) शामिल होती है। कंटूर तटबंध वर्षा अपवाह को रोकने के लिये एक छोटी बाधा के रूप में कार्य करते हैं जिससे मृदा में वर्षा जल के इंफील्ट्रेसन के लिये अवसर समय बढ़ जाता है और मृदा की ऊपरी प्रोफाइल में वर्षा जल के इंफील्ट्रेसन में वृद्धि हो जाती है। कंटूर बंध 1.5 से 2 मीटर चौड़ाई वाले मृदा के बाँध होते हैं जिनको 10 से 20 मीटर के अंतराल पर बफर स्ट्रिप्स के रूप में बनाया जाता है। जल और मृदा संरक्षण के लिये कंटूर खेती की प्रभावशीलता इस प्रणाली की डिजाइन पर निर्भर करती है लेकिन इसके अलावा यह मृदा के प्रकार, जलवायु, ढ़लान और भूमि उपयोग पर भी निर्भर करती है। कंटूर खेती को 2 से 7% तक के मध्यम ढ़लान वाली भूमि पर सबसे अधिक प्रभावी पाया गया है।

शून्य या रासायनिक जुताई

मृदा में नमी सरंक्षण के इस दृष्टिकोण में भूमि की बिल्कुल भी जुताई नहीं की जाती है। मृदा की जुताई की जरूरत से बचने हेतु रासायनिक जुताई में फसलों के खेत से खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिये शाकनाशियों का उपयोग किया जाता है। यह जुताई की तकनीक मृदा की प्रोफाइल में जल को सरंक्षित करती है क्योंकि इसमें मृदा खुली नहीं रहती है और भूमि की मृदा वातावरण के सुखाने (वाष्पीकरण) वाले तत्वों के संपर्क में भी नहीं रहती है। इससे नमी मृदा की प्रोफाइल में ही बनी रहती है। इस तकनीक के तहत नई फसल की बुआई को आम तौर पर पिछली फसल के अवशेषों में ही किया जाता है।

पलवार

मृदा की सतह से जल के वाष्पीकरण को कम करने, मृदा में नमी को बनाये रखने, मृदा के क्षरण को कम करने, खरपतवारों की वृद्धि को कम करने और पौधों को पौषक तत्वों को उपलब्ध करवाने के लिये मृदा की सतह पर रखे जाने वाले कोई भी पदार्थ या सामग्री को पलवार कहा जाता है। पलवार मृदा की नमी को बाहर निकलने से बचाने के लिये एक बाधा के रूप में कार्य करती है। ये पलवार या तो जैविक (जैसे पुआल, लकडी के चिप्स, पीट) या मानव निर्मित (जैसे पारदर्शी या अपारदर्शी प्लास्टिक) दोनों प्रकार की हो सकती है। पलवार मृदा की जल तापीय व्यवस्था को प्रभावित करके फसलों की जल उपयोग दक्षता में वृद्धि करती है जिससे पौधों की जड़ पद्धति और वृद्धि को बढ़ावा मिलता है। इसके अलावा यह मृदा की सतह से वाष्पीकरण घटक को भी कम करने में मदद करती है। नमी तनाव की स्थिति में पलवार के प्रयोग से मृदा में नमी को थोड़े समय के लिये बनाये रखा जा सकता है या बाद में फसल की वृद्धि के लिये भी संरक्षित किया जा सकता है। इसलिये, पलवार का प्रयोग फसलों की बेहत्तर उपज को प्राप्त करने में काफी फायदेमंद साबित हो सकता है।

कम और न्यूनतम जुताई

यह एक ऐसी तकनीक है जिसमें कुछ हद तक ही मृदा की जुताई की जाती है लेकिन पूरी तरह से मृदा को उल्टा या जोता नहीं जाता है। इसमें हल के साथ डिस्क या चीजल हैरो का उपयोग किया जा सकता है और संकरी स्ट्रिप्स में भूमि की जुताई की जाती है जो पंक्ति में फसलों की दूरी के

साथ मिलती है और इनके अन्तर्निहित स्थान को ऐसे ही छोड़ दिया जाता है। कम जुताई का मतलब है कि मृदा की बहुत कम मात्रा को क्षरण एवं वाष्पीकरण द्वारा नमी में होने वाली हानि को रोकने के लिये थोड़ा ही खुला छोड़ दिया जाता है। इसलिये, मृदा में नमी का संरक्षण होता है। कम जुताई की इस तकनीक को डिब्बल स्टिक रोपण भी कहा जाता है जहाँ फसलों के अवशेष के साथ बिना जुताई वाले खेत में पौधों के रोपण के लिये छड़ी या मैचेटे का उपयोग छिद्र बनाने के द्वारा किया जा सकता है।

शून्य जुताई और मृदा आवरण

इस विधि में आम तौर पर पिछली फसल की कटाई के बाद मृदा को बिना छेड़े पौधों की बुआई की जाती है के रूप में परिभाषित किया जाता है। संरक्षण जुताई में कब और कैसे जुताई की जाये यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है। यहाँ कब मूल रूप से मृदा में नमी की अवस्था को संदर्भित करता है इस प्रणाली में एक संकीर्ण स्लॉट शामिल होता है जो केवल चौड़ा और गहराई पर उचित बीज कवरेज को प्राप्त करने के लिए खोदा जाता है और इसमें कम से कम 30% पलवार का भूमि पर आवरण रहता है। इस तकनीक के तहत फसलों की बुआई के बाद पिछली फसल के अवशेषों को बिना कोई छेड़छाड़ किये मृदा की सतह पर ही रखना चाहिये जो कृषि भूमि की मृदा में नमी के सरंक्षण के लिये बहुत ही आवश्यक है।

मृदा सुधारक

असल में किसी भी कार्बनिक या अकार्बनिक सामग्री को मृदा में मिलाया जाता है तो उसकी गुणवत्ता में सुधार प्राप्त होता है इनको मृदा सुधारक के रूप में जाना जाता है (तालिका 15)। मृदा में मृदा सुधारक को मिलाने या प्रयोग का प्रमुख कारण पौधों की जड़ों और इसकी वृद्धि एवं विकास के लिये बेहतर वातावरण को प्रदान करवाना है जिसमें मृदा की संरचना और जल धारण क्षमता व पौषक तत्वों की उपलब्धता और मृदा में जीवाणुओं के रहने की स्थिति में सुधार आदि शामिल है जो पौधों की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। जब मृदा में जैविक सुधारकों का प्रयोग किया जाता है (जैसे खाद) तो यह पौषक तत्व चक्र में भी सुधार करते हैं जिससे मृदा में नमी का संरक्षण होता है।

मृदा में पौषक तत्वों की स्थिति

आजकल, कृषि में जल के उपयोग की दक्षता को बढ़ाने के लिये और फसलों के पौधों में जल के तनाव के हानिकारक प्रभाव को कम करने के लिये कई तरीकों का इस्तेमाल किया जा रहा है। प्रबंधन प्रणाली के घटकों में से एक घटक जो जल उपयोग दक्षता को प्रभावित करता है वह मृदा की उर्वरता है। एक पूर्ण और संतुलित उर्वरता कार्यक्रम अच्छी जड़ों के साथ जो बहुत कम समय में जल और पौषक तत्वों की उपलब्धता के लिये एक अच्छी मात्रा के मृदा आयतन से फसलों की पैदावार प्राप्त करने में मदद करता है। फसलों के पौधों में जल के उपयोग की दक्षता और उत्पादकता को बढ़ाने के लिये पौधों का उचित पौषण करना एक बहुत ही अच्छी रणनीति है। सीमित जल की आपूर्ति के तहत जल के उपयोग की दक्षता को बढ़ाने में पौधों के आवश्यक पौषक तत्व बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। मृदा में पौषक तत्वों का प्रयोग पौधों के जड़ विकास में अच्छी वृद्धि करता है जो मृदा की नमी को गहरी परतों से भी अवशोषित कर सकती हैं। इसके अलावा, उर्वरकों का प्रयोग पौधों की पत्तियों के प्रारंभिक विकास को भी बढ़ाता है जो मृदा को ढ़के रखती हैं और यह पत्तियाँ अधिक सौर विकिरण को भी ग्रहण करती है जिससे वाष्पीकरण कम हो जाता है। देश के विभिन्न भागो में दबाव सिंचाई प्रणाली द्वारा सिंचाई जल एवं उर्वरकों के एक साथ प्रयोग से दोनों संसाधनों के दक्ष उपयोग के परिणाम प्राप्त हुए है। इससे जल की बचत भी होगी और साथ ही साथ पौषक तत्वों के नुकसान में भी कमी आएगी जिसके परिणामस्वरूप जल उपयोग दक्षता एवं पौषक तत्व उपयोग दक्षता में भी वृद्धि होगी।

निष्कर्ष

वर्तमान में हमारे सामने यह बहुत बड़ी चुनौती है कि हमें जल उपयोग दक्षता में वृद्धि के लक्ष्य के साथ साथ मृदा प्रबंधन उपायों को विकसित करना जारी रखना है। इसके अलावा फसल पद्धतियों की एक श्रृंखला के लिये जल एवं पौषक तत्वों की प्रतिक्रिया को समझना भी शोध के लिये प्रमुख चुनौती है और इस जानकारी को उन उपकरणों में शामिल करना है जो उत्पादकों या किसानों को मृदा प्रबंधन संबंधी उपायों के निर्णय लेने में सहायता प्रदान कर सके जिससे उनके खेतों में फसलों की जल उपयोग दक्षता एवं पौषक तत्व उपयोग दक्षता में वृद्धि हो सके।

तालिका 15. विभिन्न मृदा सुधारकों के उदाहरण

अकार्बनिक मृदा सुधारक	कार्बनिक मृदा सुधारक
वर्मीकुलाइट,	पीट मौस, सा डस्ट,
परलाईट,	सीडार चिप्स, छाल,
टायर चंक्स,	बैगासे, राइस हल्स,
पी ग्रेवल,	कंपोस्ट,
रेत	प्रसंस्कृत सिवेज
	बायो सोलिड्स

मृदा में नमी सरंक्षण के लिये विभिन्न तकनीकी विकल्प

मानवीय हस्तक्षेप के कारण भूजल प्रदूषण

◆◆◆

अभिजीत सरकार[1], मधुमंती साहा[2], त्रिशा रॉय[3], पी. देबरॉय[1], तानिया सेठ[4], ओ.पी. वर्मा[1], डी.के. पंडा[1] एवं एस.के. अम्बष्ट[1]

[1] भाकृअनुप–भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर, ओड़िशा
[2] भाकृअनुप – केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, पश्चिम बंगाल
[3] भाकृअनुप –भारतीय मृदा और जल संरक्षण संस्थान, देहरादून
[4] भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना, क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, रांची

प्रस्तावना

भारत एक विकासशील देश है जहाँ जनसंख्या घनत्व विश्व के औसत जनसंख्या घनत्व से कहीं अधिक है। हर जगह मानव हस्तक्षेप ध्यान देने योग्य बात है जो पीड़ित व्यक्ति से शुरू होकर मूल्यांकन करने वाले व्यक्ति तक मौजूद है। देश की प्रकृति भी इनके साथ प्रभावित हो गई है। देश में जैसे–जैसे जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है वैसे–वैसे खाद्य की माँग भी एक साथ बढ़ रही है। यह अनुमान लगाया गया है कि हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि के कारण वर्ष 2025 एवं 2050 में खाद्यान की माँग क्रमशः 345 और 494 मिलियन टन तक पहुँच जायेगी। इस प्रकार, इस लक्षित खाद्यान उत्पादन को प्राप्त करने के लिए कृषि–रसायनों के उचित प्रबंधन के साथ साथ ही प्राकृतिक संसाधनों (मृदा एवं जल) के दक्ष उपयोग द्वारा सिंचित और वर्षा आधारित स्थिति दोनों के तहत फसल उत्पादकता में अत्यधिक वृद्धि करना बहुत ही आवश्यक है। हमें वृद्धि–विकास और आत्मनिर्भरता के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये जल की प्रत्येक बूंद का दक्ष उपयोग करना पड़ेगा अर्थात् 'प्रति जल बूंद–अधिक फसल उत्पादन' की अवधारणा पर विचार करना पड़ेगा। लेकिन यहाँ सवाल यह उठता है कि उपयोग करने योग्य उपलब्ध जल हमारे और हमारे पर्यावरण के लिये क्या पूरी तरह से सुरक्षित है? अधिकांशतः हमें इस प्रश्न के खिलाफ नकारात्मक प्रतिक्रियाएं ही प्राप्त होंगी। विभिन्न जल संसाधनों में से भूजल हमारे दिन–प्रतिदिन जीवन की क्रियाओं में अधिकतम योगदान देता है। विश्व के कुल 3% ताजा जल संसाधनों में से अधिकतर जल ध्रुवीय और पहाडी क्षेत्रों में बर्फ के रूप में पाया जाता है वैश्विक जल का केवल 1% भाग ही तरल अवस्था में मौजूद है। जबकि, कुल 98% ताजा भूजल तरल अवस्था में पाया जाता है, इसलिये, यह पृथ्वी का सबसे मूल्यवान ताजा जल संसाधन है। भूजल की गुणवत्ता मानव स्वास्थ्य और खाद्यान की मात्रा एवं गुणवत्ता के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मृदा, फसलों और आसपास के वातावरण को प्रभावित करती है।

भूजल का महत्व

- हमारी अधिकांश पेयजल की मात्रा भूजल से ही प्राप्त होती है।
- कृषि, उद्योग और रोजमर्रा के जीवन के लिये इस्तेमाल किया गया जल अधिकांशतः भूजल से ही प्राप्त होता है।
- भूजल की सतह के बिना जल का पुनःभरण संभव नहीं हो सकता।
- मौसमी परिवर्तनशीलता की परवाह किये बिना भूजल पूरे वर्ष भर उपलब्ध रहता है।
- सतही जल के मुकाबले भूजल का अक्सर ज्यादा उपचार नहीं करना पड़ता है।

भूजल प्रदूषण के स्रोत

प्रदूषण स्रोतों के क्षेत्र की सीमा और प्रदूषण के स्पष्ट स्रोतों के आधार पर भूजल प्रदूषण को बिंदु स्रोत और गैर–बिंदु स्रोत के रूप में विभाजित किया जा सकता है। जब सतही जल और भूजल एक अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र या जल निकाय के थोड़े से आयतन से ही दूषित हो जाता है तो इस प्रकर के प्रदूषण को बिंदु स्रोत कहा जाता है। जबकि, भूजल प्रदूषण का गैर–स्रोत कहीं भी मौजूद हो सकता है और यह बड़े क्षेत्रों को प्रभावित कर सकता है। दूषित पदार्थों के गैर–स्रोत उन क्षेत्रों में पर्यावरण को दूषित करते हैं जो बिंदु स्रोतों की तुलना में बड़े होते हैं। तालिका 16 में भूजल प्रदूषण के लिए जिम्मेदार उत्पादों का वर्णन किया गया है।

भूजल प्रदूषण के एंथ्रोपोजेनिक स्रोत

बिंदु स्रोत

रेडियोधर्मी और खतरनाक अपशिष्ट पदार्थ : भूजल को प्रदूषित करने के प्रमुख बिंदु स्रोतों में से एक है अगर यदि इनको सही ढंग से फेंका नहीं गया हो या हटाया नहीं गया हो। फेंकने वाली सामग्री के फैलने और रिसने की संभावनाओं के कारण भूजल सीधे ही दूषित हो सकता है जिसको लगभग भूजल से कभी भी नहीं हटाया जा सकता है।

लैंडफिल्स : भूमि के निचले भाग में लैंडफिल्स से जहरीले पदार्थों के मृदा में रिसने के कारण भूजल प्रदूषण एंथ्रोपोजेनिक बिंदु स्रोत का एक और प्रमुख उदाहरण हैं और तुरंत इस वजह से लगभग पूरा भूजल प्रदूषित हो जाता है।

यदि जब लैंडफिल्स बहुत बड़े होते हैं तो उनके द्वारा प्रदूषित भूजल की मात्रा भी अधिक होती है।

पशु अपशिष्ट : विशेष रूप से मूत्र और मल जो जमीन पर पड़े रह जाते हैं वे भी भूजल प्रदूषण का स्रोत बन सकते हैं। इस अपशिष्ट में बहुत से नाइट्रोजन युक्त यौगिक और विषाक्त पदार्थ होते हैं जो या तो सीधे या प्रकृति में कुछ संशोधन के बाद भूजल को दूषित कर सकते हैं। प्रदूषण के बिंदु स्रोत कृषि क्षेत्रों में आम हैं जहाँ पशुओं को छोटे क्षेत्रों में केंद्रित रखा जाता है जैसे कि फीडलॉट।

शहरी और औद्योगिक विकास

भूजल के प्रदूषण के अन्य बिंदु स्रोतों में सेप्टिक टैंक, द्रव भंडारण टैंक और फसल व औद्योगिक लैगून्स आदि शामिल हो सकते हैं। यदि एक प्रदूषक जल में अघुलनशील है या और भूजल स्तर तक पहुँच जाता है तो दूषित पदार्थ धीरे–धीरे बहने वाले भूजल की वजह से भूजल में स्थानांतरित हो जाते हैं। यदि स्रोत समय की अवधि के साथ प्रदूषक को बनाये रखे रखता है तो घुलनशील प्रदूषकों का वितरण एक विशेष 'प्लमलाइक' आकार ले लेगा।

अपशिष्ट पदार्थों को ले जाने वाले सीवर पाइपों से कभी–कभी आसपास की मृदा और भूजल में तरल पदार्थो का रिसाव हो जाता है। इस जल में कार्बनिक पदार्थ, अकार्बनिक लवण, भारी धातुएं, बैक्टीरिया, वायरस और नाइट्रोजन आदि होते हैं। अन्य पाइप लाइन जो औद्योगिक रसायनों और तेल ब्रिन वाहक का कार्य करती हैं वे भी कभी कभी लीक हो जाती हैं खासकर जब पाइप के माध्यम से ले जाने वाली सामग्री संक्षारक प्रकृति वाली होती हो तो।

मानव द्वारा खनन गतिविधियां भी भूजल के प्रमुख प्रदूषक स्रोतों में से एक हैं। सक्रिय और स्थगित हो गई दोनों खदानें भूजल प्रदूषण में योगदान दे सकती हैं। वर्षा के द्वारा खदान अपशिष्ट के घुलनशील खनिजों का भूमि की सतह के नीचे भूजल में रिसाव हो जाता है। इस अपशिष्ट में अक्सर धातु, अम्ल, खनिज और सल्फाइड आदि होते हैं। स्थगित हो गई खानों को अक्सर कुओं और अपशिष्ट पदार्थ के गड्ढ़ों के रूप में कभी–कभी एक साथ उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, खानों को सूखा रखने के लिये इनको पंप भी किया जाता है। यह पंपिंग दूषित भूजल को भूमि की सतह के ऊपर लाने का कारण बन सकता है, जिसको कुओं द्वारा अच्छी तरह से ग्रहण कर लिया जाता है।

जल निकास कुओं का नम क्षेत्रों में अतिरिक्त जल का निकास करने एवं मृदा की नीचे की प्रोफाइल तक जल के निर्वहन के लिये इस्तेमाल किया जाता है। इन कुओं में कई प्रकार के कृषि रसायन और जीवाणु होते हैं। हालांकि, इंजेक्शन कुओं का उपयोग तूफान के जल को इकट्ठा करने, स्पिड तरल पदार्थ को इकट्ठा करने, अपशिष्ट जल को निकालने और औद्योगिक, वाणिज्यिक व उपयोगी अपशिष्ट पदार्थों का निकास करने के लिये इस्तेमाल किया जाता है। अनुचित रूप से निर्मित कुओं में भी भूजल दूषित हो सकता है जब प्रदूषित सतह या भूजल को अच्छी तरह से कुओं में प्रवाहित किया जाता हो तो। अनुचित रूप से स्थगित कुंये एक नाली के रूप में कार्य करते हैं जिसके माध्यम से प्रदूषक भूजल की जलभृत तक पहुँच जाते हैं। यह तभी होता है जब कुओं को खुला छोड़ दिया जाता हो या कैसिंगों को हटाया दिया जाता हो जैसा कि अक्सर किया जाता है या यदि केसिंग के जंग लग गयी हो। इसके अलावा कुछ लोग अपशिष्ट पदार्थो को फेंकने के लिये इन कुओं का इस्तेमाल करते हैं जैसे कि मोटर तेल। ये दूषित पदार्थ कुओं की जलभृत तक पहुँच जाता है जिनका लोग पीने की आपूर्ति के लिये उपयोग करते हैं। स्थगित कुओं (जैसे, गैस, तेल या कोयले के लिए) या टेस्ट होल कुओं को आम तौर पर बिना ढ़के ही खुला छोड़ दिया जाता है जिससे ये भी दूषित पदार्थों के वाहक के रूप में कार्य करते हैं।

गैर–बिंदु स्रोतः

यह हम सभी जानते हैं कि मानव निर्मित भूजल प्रदूषण, गैर–बिंदु स्रोत के रूप में भूजल प्रदूषण का सबसे विनाशकारी कारण है। यहाँ कुछ प्रमुख मानव जनित तरीकों को वर्णित किया जा रहा है जिनकी वजह से भूजल प्रदूषित हो जाता है।

दुनिया भर में कृषि भूमि संशोधन या रूपान्तरण का महत्वपूर्ण कारण रहा है। भूमि की जुताई भूमि की सतह के इन्फिल्ट्रेसन और वर्षा अपवाह जैसी विशेषताओं को बदल देती है जो भूजल पुनःभरण को प्रभावित करती हैं और सीधे भूजल जलभृत में दूषित पदार्थों के वितरण को प्रभावित करती है।

नाइट्रेट और अमोनियम आयन्स नाइट्रोजन के दो प्रमुख रूप होते हैं जो पौधों द्वारा उनके उपापचय और वृद्धि की क्रियाओं द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। नाइट्रेट आयन जल में बहुत ही घुलनशील हैं जो सीधे मास फ्लो द्वारा जलभृत में पहुँच जाते हैं। अमोनियम युक्त यौगिकों की मृदा में नाइट्रीकरण क्रिया भूजल में अतिरिक्त नाइट्रेट की सांद्रता में वृद्धि होने का दूसरा अन्य प्रमुख कारण है। सब्जियों एवं पेयजल के माध्यम से अतिरिक्त नाइट्रेट का सेवन या नाइट्रेट युक्त रसायनों के संपर्क में आने से बल्यू बेबी सिंड्रोम या मिथेमोग्लोबिनेमिया रोग हो जाता है। इसकी वजह से शरीर में रक्त की ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता कम हो जाती है परिणामस्वरूप ऑक्सीजन की कमी के कारण शरीर के अलग–अलग अंगों में साइनोसिस रोग होता है। इस रोग में वयस्कों की तुलना में शिशु इस बीमारी के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

भूजल और सतही जल में कीटनाशक प्रदूषण आजकल एक प्रमुख पर्यावरण मुद्दा बन गया है। हाल ही के अध्ययनों से पता चला है कि फसलों की भूमि में प्रयोग किये जाने वाले कीटनाशकों से भूजल बहुत ही प्रदूषित हो रहा है और फिर यह कीटनाशी भूजल प्रवाह के साथ सतही जल तक वापिस आ जाते हैं। इसके अलावा, सतही जल और भूजल के बीच इन कीटनाशकों का प्रवाह कुछ कारकों के प्रति गतिशील हो होता है जैसे कि अधिक वर्षा अपवाह और भूजल दोहन के दौरान उच्च भंडारण आदि। किसी भी नदी के अधिक प्रवाह की अवधि के दौरान एट्रॉजीन की उच्च सांद्रता युक्त सतही जल तलछट और जलोढ़ जलभृत में स्थानांतरित हो जाता है, और जब नदी के स्तर में गिरावट होती है तो यह प्रवाह फिर धीरे-धीरे वापिस नदी की और चला जाता है। कुल मिलाकर कृषि क्षेत्र ऐसे बड़े क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसके माध्यम से उर्वरक और कीटनाशक आदि पर्यावरण में छोड़े जाते हैं या पहुँचते हैं।

भूजल प्रदूषण के प्रभाव

भूजल के प्रदूषण के परिणामस्वरूप पेयजल की गुणवत्ता, जल की आपूर्ति में कमी, सतही जल पद्धतियों में खराबी, स्वच्छता की अधिक लागत, वैकल्पिक जल की आपूर्ति के लिये अधिक लागत और/ या संभावित स्वास्थ्य समस्या आदि नुकसान पहुँचते हैं। यदि एक बार प्रदूषित स्रोत को नियंत्रित किया जाता है/ हटाया जाता है तो प्रदूषित भूजल का उपचार कई तरीकों से किया जा सकता है जिनको कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं के रूप में नीचे प्रस्तुत किया गया है।

- प्रदूषण के प्रवाह को रोकना।
- प्रदूषित जल का पंप के माध्यम से दोहन करना, इसका उपचार करना और जलभृत को वापस लौटाना।
- भूजल को उसी जगह पर छोड़ना और जल या प्रदूषित पदार्थ का उपचार करना।
- प्रदूषक को स्वाभाविक रूप से कम (न्यून) करने के लिये प्रदूषित पदार्थ को अनुमति देने के साथ-साथ एक विशेष स्रोत नियंत्रक का कार्यान्वयन करना।

अत: भूजल के प्रदूषण को रोकने के लिये स्थान विशिष्ट कारकों के आधार पर उचित उपचारात्मक तकनीकों का चयन करना और अक्सर संभावित जोखिमों के आधार पर सफाई के लक्ष्यों को मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण की सुरक्षा को ध्यान में रखकर पूरा करना चाहिये। जिस तकनीक का भी चयन किया गया है वो सफाई के लक्ष्यों को प्राप्त करने में मदद करेगी। ऐसी दक्ष तकनीकों का चयन करना होगा जिससे भूजल को प्रदूषित होने से बचाया जा सके।

निष्कर्ष

हमारे देश में कृषि के तेजी से विकास के साथ साथ पिछले कई दशकों के दौरान लगातार बढ़ती आबादी, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण की बढ़ती गति और जल संसाधनों की बढ़ती हुई सामाजिक माँग के साथ सतही जल और भूजल दोनों ही लगातार विभिन्न प्रदूषक पदार्थों के कारण प्रदूषित हो रहे हैं। इसकी प्रत्यक्ष अदृश्यता के कारण अधिकांश सार्वजनिक क्षेत्रों में भूजल हमेशा दृष्टि और दिमाग से बाहर ही रहा है। इसलिये, भूजल प्रदूषण बहुत जटिल, अदृश्य और आमतौर पर दीर्घकालिक प्रभाव रखता है। अत: हमें ऐसी तकनीकों का विकास करना होगा जिससे भूजल जैसे मूल्यवान संसाधन को प्रदूषित होने से बचाया जा सके।

तालिका 16. संभावित हानिकारक उत्पादों द्वारा भूजल प्रदूषण

उत्पाद	भूजल प्रदूषण के लिये हानिकारक भाग
• उर्वरक	• नाइट्रेट
• कीटनाशक (सभी प्रकार के)	• नेफ्थेलीन, फॉस्फोरस, जाइलीन, क्लोरोफोर्म्स, भारी धातु, क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्बन्स
• छपाई स्याही	• फिनोल-फोमेर्ल्डिहाइड, भारी धातु
• स्विम्मींग पूल क्लोरीन	• सोडियम हाइपोक्लोराइड
• आभूषण क्लीनर्स	• सोडियम साइनेआइड
• ड्रेन क्लीनर्स	• 1,1,1-ट्राईक्लोरोएथेन
• टॉइलेट क्लीनर्स	• जाइलिन्स, सल्फोनेट्स, क्लोरीनेटेड फिनोल्स
• घरेलू क्लीनर्स	• जाइलिन्स, ग्लाइकोल ईथर्स, आइसोप्रोपेनोल
• रेफ्रीजीरेंट्स	• 1,1,2-ट्राईक्लोरो-1,2,2-ट्राईफ्लोरोएथेन
• फोटोकेमिकल्स	• फिनोल्स, साइनेआइड
• डिसइन्फेक्टेंट्स	• क्रिसोल्स
• गेसोलीन	• हाइड्रोकार्बन्स
• डिटर्जेंट्स	• अल्काइल बेंजीन सल्फोनेट्स

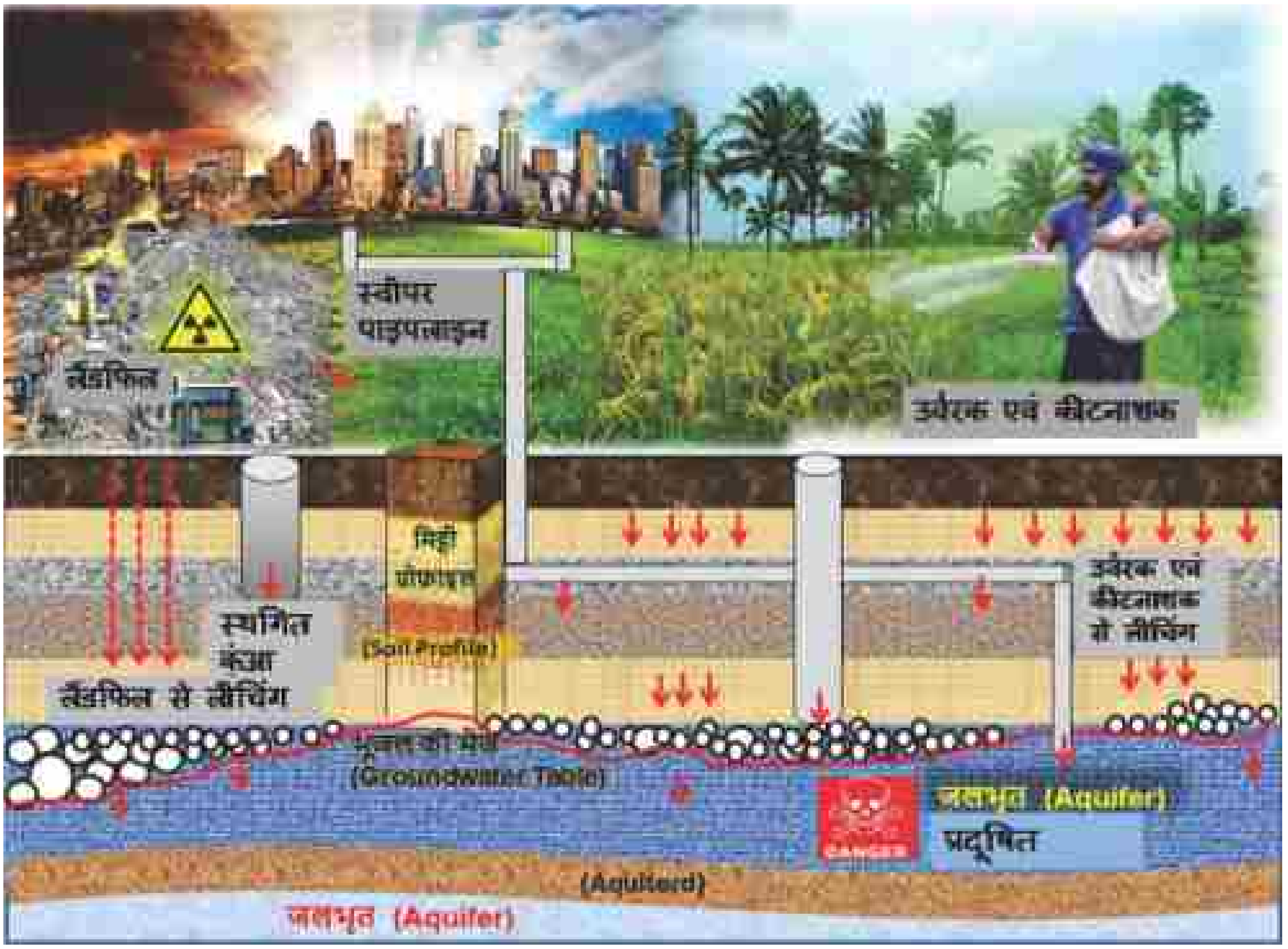

अपशिष्ट पदार्थ, उर्वरक एवं कीटनाशकों द्वारा भूजल प्रदूषण

हानिकारक कीटनाशकों का धान की फसल में छिड़काव

जल-मृदा-पौधे-भोजन शृंखला के द्वारा मनुष्यों में आर्सेनिक का एक्सपोजर-एक मूल्यांकन

◆◆◆

पार्थ देबरॉय[1], ओ.पी. वर्मा[1], तानिया सेठ[2], अभिजीत सरकार[1], मधुमंती साहा[3] एवं एस.के. अम्बष्ट[4]

[1]वैज्ञानिक, भाकृअनुप-भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर, ओडिशा; [2]वैज्ञानिक, भाकृअनुप-पूर्वी क्षेत्र के लिये अनुसंधान परिसर, क्षेत्रीय केंद्र, रांची, झारखंड; [3]वैज्ञानिक, भाकृअनुप-केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, पश्चिम बंगाल; [4]निदेशक, भाकृअनुप-भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर, ओडिशा

प्रस्तावना

आर्सेनिक एक सर्वव्यापी तत्व है जो पृथ्वी की ऊपर की सतह (पपड़ी) में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जिसका तत्वों में 20 वां स्थान है तथा यह पिरियोडिक तालिका के समूह-15 से संबंधित धातु के रूप में रासायनिक रूप से वर्गीकृत है। आर्सेनिक की सबसे मुख्य ऑक्सीडेशन अवस्थाएं हैं: (i) -3 (आर्सेनाइड), (ii) +3 (आर्सेनाइट्स) और (iii) +5 (आर्सेनेट्स) आदि। यह अकार्बनिक या कार्बनिक दोनों रूप में मौजूद हो सकता है। आम तौर पर कार्बनिक आर्सेनिक की तुलना में अकार्बनिक आर्सेनिक अधिक विषैला और मानवों के लिये कैंसरजनक माना जाता है। महाद्वीपीय परत में आर्सेनिक की औसत सांद्रता 1-5 मिलीग्राम/किग्रा होती है जो यह दोनों एंथ्रोपोजेनिक और भूजनिक स्त्रोतों से आती है। यद्यपि, आर्सेनिक प्रदूषण के एंथ्रोपोजेनिक स्त्रोतों में तेजी से वृद्धि हो रही है जो कि बहुत ही महत्वपूर्ण है। हाल ही के प्रकरण में यहाँ यह भी ध्यान दिया जाना चाहिये कि गंगा-मेघना-ब्रह्मपुत्र (GMB) नदियों के मैदानी क्षेत्रों में भूजल का आर्सेनिक प्रदूषण भूजनिक प्रवृति का है जो हजारों वर्षों से हिमालय की पहाड़ियों में उपस्थित तलछट चट्टानों से नदियों द्वारा स्थानांतरित हो रहा है।

आर्सेनिक प्रदूषित भूजल को पीना मानव के लिये एक्सपोजर का प्रमुख साधन है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 10 माइक्रोग्राम/लीटर (डब्ल्यूएचओ, 1993) के रूप में पीने के जल के मानक को स्थापित करने के लिये एक पहल की है जबकि भारत ने आर्सेनिक की अधिकतम स्वीकार्य सीमा 50 माइक्रोग्राम/लीटर रखी है। हालांकि, हाल ही की जाँच से पता चला है कि खाद्य फसल विशेष रूप से धान मनुष्यों में आर्सेनिक की जोखिम का एक संभावित मार्ग हो सकता है। लंबी अवधि के लिये आर्सेनिक दूषित खाद्य पदार्थों का उपभोग भोजन-श्रृंखला को प्रदूषित करके आर्सेनिकोसिस रोग का मुख्य कारण है।

भूजल में आर्सेनिक का प्रदूषण

भारत के पश्चिम बंगाल राज्य में वर्ष 1983 के दौरान भूजल में आर्सेनिक प्रदूषण का मामला पहली बार दर्ज किया गया था। इसके अलावा देश के अन्य राज्यों जैसे झारखंड, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि जो गंगा नदी के मैदानी क्षेत्र में स्थित हैं एवं ब्रह्मपुत्र और इंफाल नदियों की बाढ के मैदानी क्षेत्रों में तथा असम और मणिपुर एवं छत्तीसगढ़ राज्य के कुछ भागों में लंबे समय से वहाँ नलकूपों के पीने के जल में 50 माइक्रोग्राम/लीटर की स्वीकार्य सीमा से अधिक आर्सेनिक उपस्थित होने के कारण आर्सेनिक प्रदूषण की समस्या सामने आई है। देश के बाढ़ ग्रसित मैदानी क्षेत्रों में स्थित और भी अन्य राज्यों में भी भूजल में आर्सेनिक प्रदूषण होने की संभावना देखी गई है। इन सभी राज्यों में हाथ से संचालित

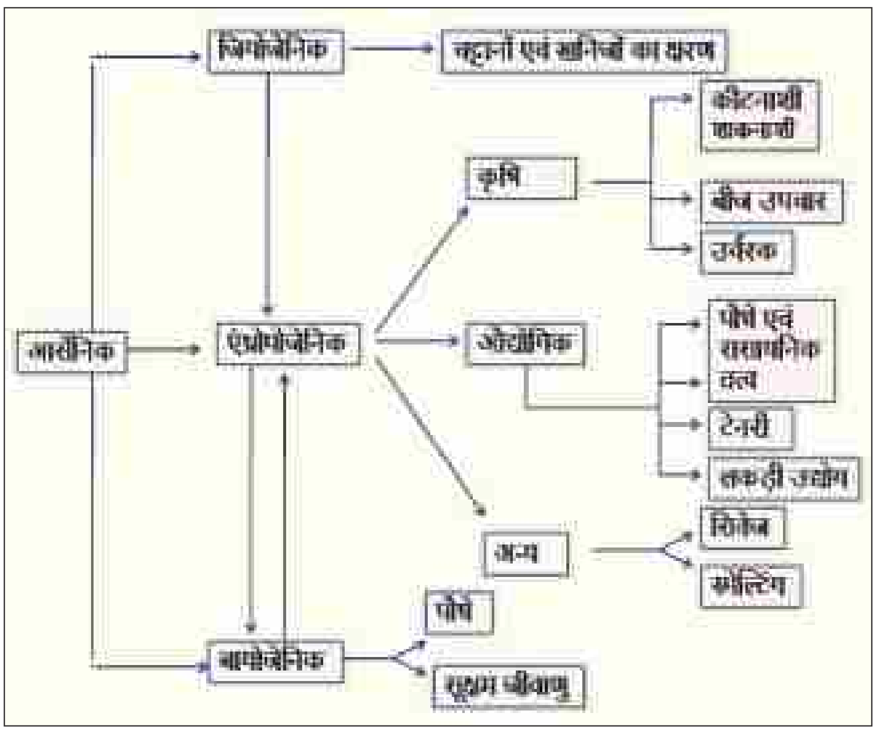

आर्सेनिक के मुख्य स्त्रोत (स्पार्क्स, 2005)

कुल 16969 नलकूपों के जल के नमूनों का विश्लेषण करने से पता चला कि 45.96% और 22.94% जल के नमूनों में आर्सेनिक की उपस्थिति क्रमश: 10 माइक्रोग्राम/लीटर और 50 माइक्रोग्राम/लीटर से भी अधिक पायी गई है जो लगभग 50 मिलियन लोगों को आर्सेनिक प्रदूषण की समस्या से प्रभावित करती है (एनआईएच एवं सीजीडब्ल्यूबी, 2010)।

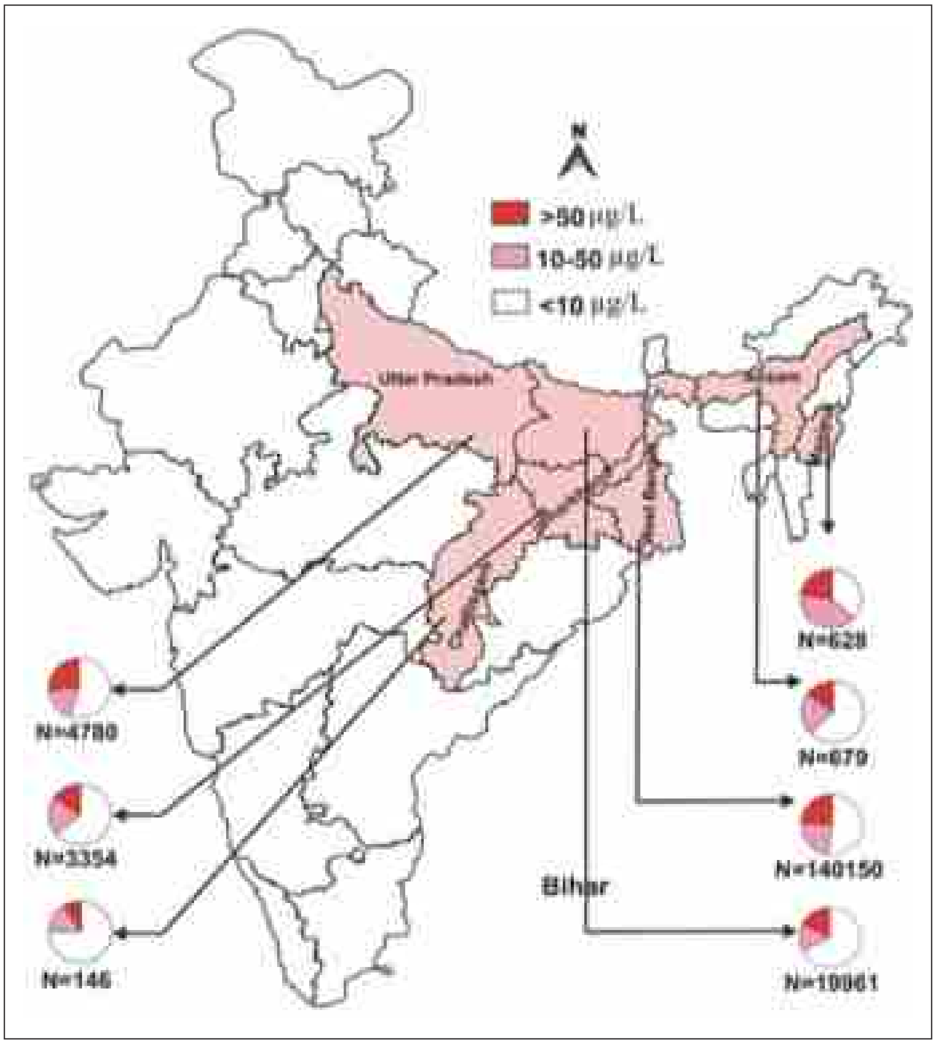

भारत में आर्सेनिक प्रदूषण से प्रभावित राज्य

मृदा में आर्सेनिक प्रदूषण

चूंकि पिछले कुछ दशकों से आर्सेनिक प्रदूषण से प्रभावित क्षेत्रों में फसलों की सिंचाई के लिये बड़े पैमाने पर भूजल का उपयोग हुआ है इसलिये, कई शोधकर्ताओं ने वहाँ कृषि के उपयोग में ली जाने मृदा में आर्सेनिक के संग्रहण को बताया है। रॉय चौधरी एट आल (2002) ने पश्चिम बंगाल में डोमक्ल ब्लॉक के लिये बताया कि वहाँ परती भूमि की मृदा में 5.31 मिलीग्राम/किग्रा के रूप में आर्सेनिक उपस्थित है जबकि पास की सिंचित भूमि में क्रमश: 11.5 और 28.0 मिलीग्राम/किग्रा की आर्सेनिक की मात्रा उपस्थित थी। उन्होंने आर्सेनिक इनपुट की गणना लगभग 1.6–16.8 किलोग्राम/हे/वर्ष के रूप में की। नॉरा एट अल 2005 ने बताया कि पश्चिम बंगाल के मालदा जिले में धान के खेतों की सबसे ऊपर की मृदा की परतों में आर्सेनिक की सांद्रता (लगभग 38 मिलीग्राम/किलोग्राम) कम सिंचित गेहूँ के खेतों (18 मिलीग्राम/किलोग्राम) की मृदा से दोगुनी और बिना प्रदूषित जल से सिंचित धान के खेतों की मृदा की तुलना में 5 गुना अधिक पायी गयी।

खाद्य फसलों में आर्सेनिक प्रदूषण

वर्तमान के दौरान मृदा और भूजल में आर्सेनिक का प्रदूषण पौधों के लिये एक गंभीर खतरा बना हुआ है। पौधों को अपने ऊतकों में आर्सेनिक को जमा करने के रूप में जाना जाता है और ये पौधे एक निश्चित डिग्री की सहिष्णुता को भी प्रदर्शित करते हैं। आर्सेनिक की उच्च सांद्रता पौधों के लिये जहरीली होती है क्योंकि यह पौधे की उपापचयी प्रक्रियाओं को बाधित कर सकती है इस प्रकार बायोमास उत्पादन और विभिन्न फसलों की पैदावार कम हो

जाती है। दास एट आल 2013 ने धान की पत्तियों और जड़ों में आर्सेनिक की विषाक्तता के लक्षणों को 40 मिलीग्राम/किलोग्राम से अधिक के आर्सेनिक के स्तर के उपचार के साथ दर्ज किया जबकि आर्सेनिक के स्तर की मात्रा 10 मिलीग्राम/किलोग्राम से ऊपर होने पर भरे हुए दाने/पेनीकल और परिपक्व दाने/पेनीकल की संख्या में काफी कमी हुई। हालांकि, अकार्बनिक आर्सेनिक का पौधे की जड़ों से ऊपरी भागों तक स्थानांतरण आम तौर पर हाइपर–एकूमिलेटर्स जैसे कि जीनस टेरिस के कुछ फर्न में होता है। धान की जड़ों में इसकी शूट्स की तुलना में लगभग 28–75 गुना अधिक आर्सेनिक पाया गया है। आर्सेनिक प्रदूषित मृदा में उगाई गई फसलों और आर्सेनिक दूषित भूजल से सिंचित फसलों में बिना कोई लक्षण दिखाई दिये इन फसलों के खाद्य भागों में पर्याप्त मात्रा में आर्सेनिक जमा हो सकता है।

रॉय चौधरी एट अल (2002) ने पश्चिम बंगाल राज्य के मुर्शिदाबाद जिले में किये गये अपने अनुसंधान से यह निष्कर्ष निकाला कि सब्जियों, अनाज वाली फसलों, जड़ी बूटियों और मसालों में आर्सेनिक की सांद्रता <0.004 से 0.693 मिलीग्राम/किलो के बीच पायी गई। रहमान एट अल 2013 द्वारा पश्चिम बंगाल के माल्दा जिले के सभी ब्लॉकों में आर्सेनिक प्रदूषित सब्जियों की खेती के खेतों के नमूनों का मूल्यांकन किया गया और आर्सेनिक की औसत सांद्रता क्रमश: इस क्रम में पायी गई जैसे कि पत्तीदार सब्जियाँ (0.321 मिलीग्राम/किग्रा) कोल फसलें (0.298 मिलीग्राम/किग्रा) जड़ वाली सब्जियाँ (0.27 मिलीग्राम/किलो) बल्ब वाली सब्जियाँ (0.227 मिलीग्राम/किग्रा) फल वाली सब्जियाँ (0.105 मिलीग्राम/किग्रा) आदि। जबकि आर्सेनिक की सांद्रता दलहन वाली सब्जियों (0.095 मिलीग्राम/किग्रा) में अपेक्षाकृत कम दर्ज हुई। उन्होंने यह भी बताया कि विभिन्न फसलों के बीच से कंद फसलों में आर्सेनिक की मात्रा (0.213–1.464 मिलीग्राम प्रति किग्रा सूखा वजन) अधिक पायी गई, इसके बाद अनाज वाली फसलों (0.097–1.141), कोल फसलों (0.174–0.456) और सब्जियों (0.054–1.079) में पायी गई जबकि फलों वाली फसलों (0.00–0.276), मसालों (0.00–0.231) दालों (0.00–0.294) और कुकरबिटेसीयस (0.00–0.076) फसलों में आर्सेनिक की कम मात्रा दर्ज की गई।

धान की फसल में आर्सेनिक के संचय को एक आपदा के रूप में देखा गया है क्योंकि धान से प्राप्त चावल का मुख्य भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है। धान की फसल को आमतौर पर बाढ़ की स्थिति में उगाया जाता है जो मृदा में आर्सेनिक की जैव उपलब्धता को प्रभावित करती है जिससे अन्य सूखी भूमि की फसलों की तुलना में धान के दानों में आर्सेनिक का अधिक संचय होता है। बाढ़ या एनेरोबिक स्थितियों में धान के खेत की मृदा में आर्सेनिक आर्सेनेट की तुलना में आर्सेनाइट की अधिकता बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप आर्सेनिक की जैव उपलब्धता बढने से इस धातु का धान के दानों में अत्यधिक संचय बढ़ जाता है। जावला और डक्सबरी (2008) ने बताया कि धान की विभिन्न किस्मों में आसेर्निक की सांद्रता सूखे वजन के आधार पर 0.005 से 0.710 मिलीग्राम/किग्रा के बीच रहती है। धान के दाने में आर्सेनिक की सांद्रता 2.0 मिलीग्राम/किग्रा तक पाई गई है जो कि धान में डब्लूएचओ की अनुमत सीमा (1 मिलीग्राम/किलोग्राम) के दिशा निर्देशों से अधिक है। बोरो धान (शीतकालीन मौसम) की अधिक सिंचाई जल की आवश्यकता के कारण इसके दाने में अमन धान (मॉनसून मौसम) की तुलना में अधिक आर्सेनिक की सांद्रता दर्ज हुई है।

आर्सेनिक का मानव के लिये एक्सपोजर

पीने का जल जानवरों और मनुष्यों में आर्सेनिक के ग्रहण का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। पीने के जल के साथ–साथ भोजन भी आर्सेनिक ग्रहण का एक अन्य प्रमुख स्रोत माना जाता है जो कि मानव में आर्सेनिक एक्सपोजर के लिये जिम्मेदार है। वर्ष 1983 में फूड एडिटिव्ज पर एफएओ/डब्ल्यूएचओ की संयुक्त एक्सपर्ट कमेटी (JECAFA) ने मानवों के लिये 0.002 मिलीग्राम/किग्रा शरीर वजन के रूप में अकार्बनिक आर्सेनिक का अधिकतम संतोषजनक दैनिक सेवन निर्धारित किया था और वर्ष 1998 में अधिकतम संतोषजनक साप्ताहिक सेवन (पीटीडब्लूआई) को 0.015 मिलीग्राम/किग्रा निर्धारित किया गया। प्रभावित क्षेत्रों में कई अनुसन्धानों ने कई जगहों पर आर्सेनिक का मनुष्यों द्वारा सेवन करने की पुष्टि की। रॉय चौधरी एट अल (2002) ने आर्सेनिक प्रभावित क्षेत्र यानि पश्चिम बंगाल के मालदा जिले में अपने अनुसंधान से बताया कि खाद्य पदार्थों के माध्यम से बच्चों एवं व्यस्कों में आर्सेनिक का सेवन क्रमश: 97 माइक्रो ग्राम/दिन एवं 180 माइक्रो ग्राम/दिन था और पीने के जल के माध्यम से 400 और 200 माइक्रो ग्राम/दिन था। खाद्य पदार्थों में से धान (ओराइजा सैटिवा) को इसके अधिक उपभोग के कारण आम तौर पर आर्सेनिक सेवन का मुख्य योगदानकर्ता माना जाता है। ग्रामीण लोगों के आहार में लगभग 400 ग्राम धान का उपभोग आम बात है जो वहाँ अपेक्षाकृत अधिक आर्सेनिक सेवन का कारण हो सकता है। इसके अलावा, आर्सेनिक प्रभावित क्षेत्रों में दूषित जल से चावल को उबालने के कारण पके हुये चावल में कच्चे चावल की तुलना में अधिक आर्सेनिक हो सकता है। जब पशुधन आर्सेनिक के संपर्क में आता है तो पशु उत्पादों जैसे दूध और मांस आदि में आर्सेनिक जैविक उत्पाद के रूप में जमा हो जाता है। स्वीकार्य सीमा के मुकाबले

आर्सेनिक का सेवन मनुष्यों में कई बीमारियों जैसे त्वचा की बीमारी तथा त्वचा, फेफड़े, मूत्राशय, यकृत और गुर्दे के कैंसर के साथ–साथ कई अन्य कार्डियोवास्कुलर, न्यूरोलॉजिकल व श्वसन रोगों आदि का कारण बन जाता है जिससे मानव के स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है। जल और भोजन दोनों के लिये अंतराष्ट्रीय सुरक्षा मानक हमारे देश के आर्सेनिक प्रदूषित क्षेत्रों में जल और भोजन की मात्रा के उपभोग के अनुसार पर्याप्त रूप से प्रतिबिंबित नहीं करते हैं। अत: ऐसे मानक जो हमारे देश के लिए अधिक प्रासंगिक हैं हमें उन्हें स्थापित करने की बहुत ही आवश्यकता है।

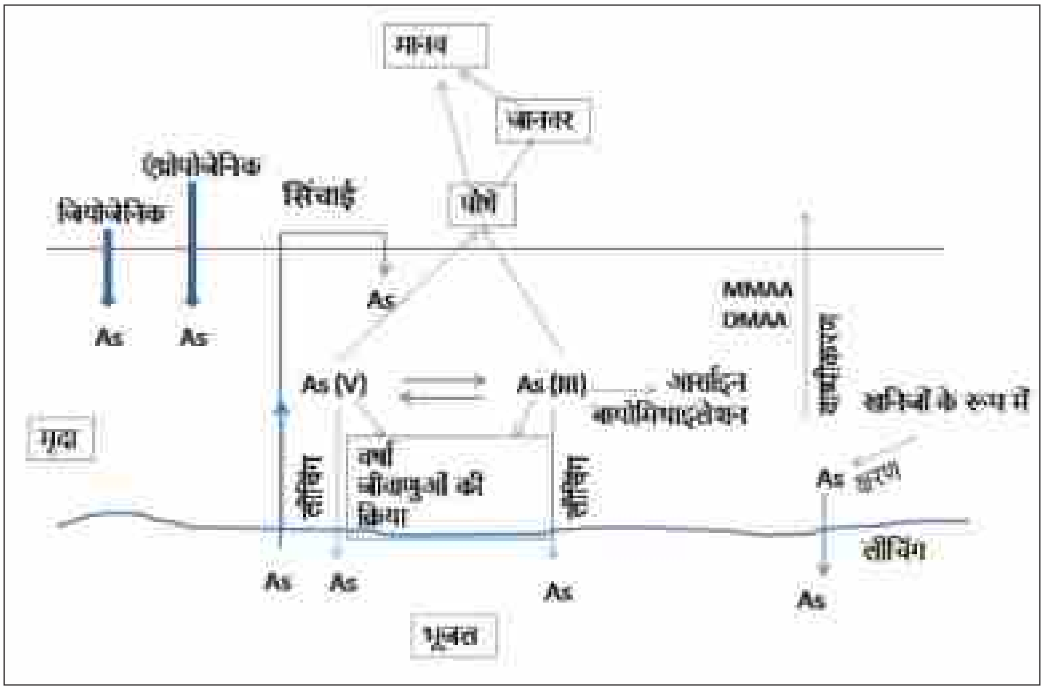

आर्सेनिक का बायोकेमिकल चक्र

कृषि प्रबंधन विकल्प: आर्सेनिक विषाक्तता के प्रभाव को कम करने के लिए हमारे देश के विशाल उपजाऊ मैदानों में रहने वाले मनुष्यों के लिये कई कृषि संबंधी गतिविधियों को अपनाया जा सकता है जिससे देश में कृषि के तहत जल एवं मृदा को आर्सेनिक से प्रदूषित होने से बचाया जा सके।

i) **रासायनिक संशोधन:** कार्बनिक पदार्थ या खनिज पौषक तत्वों जैसे आयरन, सल्फर और सिलिकोन का मृदा में प्रयोग पौधों के खाद्य भागों में हुये आर्सेनिक संचय को काफी कम कर सकता है जिससे इसका ग्रहण कम हो जाता है और खाद्य फसलों में स्थानान्तरण भी कम हो जाता है।

ii) **जल प्रबंधन और सिंचाई की विधियाँ:** सिंचाई जल के उपयोग में कमी मृदा में आर्सेनिक के इनपुट को कम करेगी जिससे पौधों में आर्सेनिक का हस्तांतरण कम होगा। इसके अलावा, उथली जलभृत से पम्पिंग की बजाय सिंचाई के स्रोत के रूप में सतही जल संसाधनों का चयन करने से भी आर्सेनिक प्रदूषण कम हो सकता है।

iii) **फसल का चयन:** फसल पद्धतियाँ जिनको कम सिंचाई जल की आवश्यकता होती है वो फायदेमंद होगी। इसके अलावा, उन किस्मों जिनको आर्सेनिक के प्रति सहिष्णु माना जाता है और और जो एक सीमित मात्रा में आर्सेनिक का ग्रहण करती हों उनकी सिफारिश की जानी चाहिये या चयन करना चाहिये।

छोटे पैमाने पर मृदा से आर्सेनिक को कम करने के लिये फाइटोरेमेडियसन का सुझाव भी दिया जा सकता है । लेकिन इसकी कई समस्याएँ हैं जो व्यापक पैमाने पर इसके उपयोग को सीमित करती हैं।

निष्कर्ष

गंगा–मेघना–ब्रह्मपुत्र नदियों के क्षेत्रों में सिंचाई, पीने का जल और अन्य संबन्धित गतिविधियों के उपयोग के लिये आर्सेनिक प्रभावित दूषित भूजल मुख्य स्रोत है। अत: इन प्रदूषित क्षेत्रों में पीने के जल की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिये आर्सेनिक मुक्त गहरी भूजल जलभृत एवं कम लागत वाली निस्पंदन तकनीकों की पहचान की जानी चाहिये। इसके अलावा, संचित वर्षा जल का सिंचाई के लिये अधिक उपयोग आर्सेनिक प्रदूषित भूजल के उपयोग को कम कर सकता है और इसके साथ–साथ कृषि–संबंधी प्रबंधन विकल्पों को अपनाने से निश्चित रूप से जहरीले तत्वों का खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कम हो जाएगा जो अंतत: लाखों लोगों के लिये आर्सेनिक प्रदूषण के खतरे को कम करेगा।

संदर्भ

दास, आई., घोष, के., दास, डी.के. और सान्याल, एस.के. 2013. पश्चिम बंगाल में धान की फसल में आर्सेनिक की विषाक्तता का आकलन। केमिकल स्पेसियसन बायोअवेलेबिलिटी, 25 (3): 201–208 ।

एफएओ/डब्ल्यूएचओ, 1989. खाद्य एफएओ/डब्ल्यूएचओ की खाद्य एडिटिवज पर विशेषज्ञ समिति कैंब्रिज, इंग्लैंड।

एनआईएच और सीजीडब्ल्यूबी, 2010. भारत में आर्सेनिक प्रदूषित भूजल की समस्या का निवारण और उपाय: एक विजन दस्तावेज।

नोरा, एस., बर्नर, जे.ए., अग्रवाल, पी., वैग्नर, एफ., चंद्रशेखरम, डी. और स्टुबेन, डी. 2005. मृदा और फसलों पर आर्सेनिक युक्त भूजल की सिंचाई का प्रभाव: भारत में पश्चिम बंगाल के डेल्टा मैदानों में एक भौगोलिक अध्ययन। एप्लाइड जीयोकेमिस्ट्री 20: 1890–1906 ।

रहमान, एस., सिन्हा, ए.सी., पति, आर. और मुखोपाध्याय, डी. 2013. आर्सेनिक प्रदूषण: भारत के पश्चिम बंगाल में प्रभावित क्षेत्रों के लिये एक संभावित जोखिम। एनवाइरोनमेंटल जीयोकेमिस्ट्री एंड हेल्थ 35: 119–132 ।

रॉयचौधुरी, टी., उचीना, टी, टोकूनागा, एच. और एंडो, एम. 2002. भारत के पश्चिम बंगाल में आर्सेनिक प्रभावित क्षेत्रों से खाद्य संमिश्रणों में आसेर्निक का सर्वेक्षण। फूड एंड केमिकल टोक्सिकोलोजी, 40: 1611–1621 ।

स्पार्क्स, डोनाल्ड एल. 2005. एड्वान्सेज इन एग्रोनोमी, वॉल्यूम 86, एल्सेवियर एकेडेमी, पृष्ठ 440 ।

डब्ल्यूएचओ, 1993. पीने के जल की गुणवत्ता के लिए दिशानिर्देश वॉल्यूम 1– रिकमडेसन (2 एडिसन) डब्ल्यूएचओ, जिनेवा।

जावला, वाई.जे., और डक्सबरी, जे.एम. 2008. धान में आर्सेनिक : I. धान के दाना में कुल आर्सेनिक के सामान्य स्तर का अनुमान। एनवाइरोनमेंटल साइंस एंड टेक्नोलोजी, 42, 3856–3860 ।

फसलों में सिंचाई के लिये अपशिष्ट जल का उपयोग

◆◆◆

रचना दूबे, एम. रायचौधुरी, पी.एस. ब्रह्मानन्द एवं ओ.पी. वर्मा

भाकृअनुप – भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर, ओडिशा

प्रस्तावना

देश में बढ़ती आबादी, औद्योगिकीकरण, गहन कृषि और शहरीकरण आदि हमारे विशाल लेकिन सीमित जल संसाधनों पर भारी दबाव डालते हैं। इसके परिणाम स्वरूप, भारत में वर्ष 2050 तक जल की माँग 32 प्रतिशत तक बढ़ जाएगी, जिसमें औद्योगिक और घरेलू क्षेत्र में ही इस पूरी माँग का 85 प्रतिशत हिस्सा होगा। अनियंत्रित शहरीकरण के कारण भूजल का अधिकाधिक दोहन, जलभृतों को पुन:भरित करने में असफलता एवं जलग्रहण (कैचमेंट) क्षमता में कमी आदि जल संतुलन में अनिश्चित दबाव के कई मुख्य कारण हैं। वर्तमान में बढ़ती वैश्विक आबादी के साथ जल की आपूर्ति और माँग के बीच का अंतर बहुत बढ़ता ही जा रहा है और यह एक ऐसे खतरनाक स्तर तक पहुँच गया है कि दुनिया के कुछ हिस्सों में यह मानव अस्तित्व के लिये खतरा पैदा कर रहा है। दुनिया भर में बहुत से वैज्ञानिक जल संरक्षण के नये और आधुनिक तरीकों पर अनुसंधान कर रहे हैं। लेकिन अभी भी इसमें उतनी प्रगति प्राप्त नहीं हुई है जितनी की होनी चाहिये। अत: अब समय आ गया है कि हमें शहरी अपशिष्ट जल को उपचारित करके इसके पुन: उपयोग के माध्यम से फसलों की सिंचाई और अन्य प्रयोजनों के लिये इसको उपयोग में लेना चाहिये। ऐसा करने से सीमित मात्रा में उपलब्ध ताजे जल को अन्य क्षेत्रों में उपयोग के लिये प्रयोग में लिया जा सकता है जिन्हें ताजे जल की अधिक जरूरत होती है और इसके अलावा सिंचाई तथा अन्य पारिस्थितिकी तंत्र की सेवाओं के लिये भी इस अपशिष्ट जल का उपयोग कर सकते हैं। शहरी क्षेत्रों में अपशिष्ट जल सें सिंचाई एक पुरानी विधि है। पूरे वर्ष भर ताजा जल आसानी से उपलब्ध नहीं होने के कारण यह अपशिष्ट जल विशेष रूप जल की कमी वाले सूखे क्षेत्रों में फसलों की सिंचाई के लिये और इसके अलावा पौषक तत्वों की उपलब्धता का एक प्रमुख स्रोत बनता जा रहा है। समान्यतया ऐसा जल जो मानव उपयोग से प्रभावित हुआ हो उसे अपशिष्ट जल कहते हैं। यह घरेलू, औद्योगिक, कृषि या किसी भी व्यावसायिक गतिविधियों, वर्षा जल या सीवर जल के किसी भी संयोजन से इस्तेमाल किया गया जल हो सकता है। विकसित देशों में इस अपशिष्ट जल का कृषि में उपयोग इसके समुचित उपचार के बाद ही किया जाता है लेकिन विकासशील और अविकसित देशों में कम पैसों की वजह से ज्यादातर लोग सीधे ही इसका कृषि में उपयोग करते हैं।

भारत में अपशिष्ट जल की स्थिति

पर्यावरण सूचना पद्धति (ENVIS) के अनुसार हमारे देश में कुल सीवेज 61754 मिलियन लीटर प्रतिदिन (MLD) की मात्रा में उत्पन्न होता है जिसमें से केवल 22963 मिलियन लीटर प्रतिदिन का ही उपचार किया जा सकता है अर्थात 38% को उपचारित किया जा सकता है जबकि शेष 62% (38791 MLD) को सीधे पास के जल निकायों में अनुपचारित रूप में ही डाल दिया जाता है। देश में पाँच राज्य जैसे कि महाराष्ट्र, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और गुजरात आदि कुल सीवेज के 50% हिस्से को उत्पादित करते हैं। वर्तमान में ऐसा प्रतीत होता है कि अपशिष्ट जल उत्पादन और इसके उपचार (तालिका 17) के बीच एक बड़ा अंतर मौजूद है। यहाँ तक कि अपशिष्ट जल के उपचार के लिये जो सुविधाएं उपलब्ध हैं उनका भी एक बहुत बड़ा हिस्सा इनके संचालन और इनकी रखरखाव लागत के कारण सही रूप से संचालित नहीं हो पाता है।

तालिका 17: कुल जल आपूर्ति, सीवेज उत्पादन और उपचार सुविधा की उपलब्धता

वर्ग	शहर	आबादी	कुल जल आपूर्ति (एमएलडी)	अपशिष्ट जल उत्पादन (एमएलडी)	उपचार क्षमता (एमएलडी)
प्रथम श्रेणी शहर	498	14,30,83,804	44,769.05	35,558.12	11,553.68
द्वितीय श्रेणी शहर	410	3,00,18,368	3,324.83	2,696.7	233.7
कुल	908	25,77,54,640	48,093.88	38254	11787.38

स्रोत: सीपीसीबी, 2009

एनवायरनमेंट प्रोटेक्शन एजेंसी (EPA) ने कुछ दिशा निर्देश तैयार किये हैं और नजदीकी नदी निकायों में उपचारित किये गये अपशिष्ट जल के निर्वहन के लिए नियम भी बनाए हैं लेकिन उपचार संयंत्र इनमें से अधिकांश मानकों को पूरा नहीं करते हैं। सामान्यत: अपशिष्ट जल की संरचना मुख्य रूप से जैविक और अजैविक प्रकृति के निलंबित और विघटित ठोस के छोटे अनुपात के साथ जल (>99%) की है। ऑर्गेनिक्स में ज्यादातर कार्बोहाइड्रेट, वसा, लिग्निन, डिटर्जेंट, प्रोटीन आदि होते हैं। तालिका 18 में घरेलू अपशिष्ट जल के प्रमुख घटकों को दिखाया गया है।

तालिका 18: घरेलू अपशिष्ट जल में प्रमुख घटक (मिलीग्राम/लिटर)

संघटक	मजबूत	मध्यम	कमजोर
कुल ठोस पदार्थ	1200	700	350
विघटित ठोस पदार्थ	850	500	250
निलंबित ठोस	350	200	100
नाइट्रोजन (N)	85	40	20
फास्फोरस (P)	20	10	06
क्लोराइड	100	50	30
क्षारीयता ($CaCO_3$ के रूप में)	200	100	50
ग्रीस	150	100	50
बायोलोजिकल ऑक्सीजन माँग (BOD)	300	200	100

स्रोत: संयुक्त राष्ट्र विकास के लिए तकनीकी सहयोग विभाग (1985)

नदियों और स्थानीय जल निकायों में अनुपचारित सीवेज जल का प्रत्यक्ष वितरण पौषक संवर्धन या यूट्रोफिकेशन करता है जो मीठे पानी की गुणवत्ता को कम कर देता है। इसलिये, नदी और आस-पास के जल निकायों में सीवेज जल के निर्वहन के लिये समुचित योजना और निष्पादन की अत्यंत आवश्यकता है। यह ही एक ऐसा तरीका है जिसके माध्यम से इसे सिंचाई के प्रयोजनों के लिये कृषि में उपयोग में लिया जा सकता है।

कृषि में अपशिष्ट जल का उपयोग

देश में अपशिष्ट जल की बढ़ती मात्रा और इसकी अपर्याप्त उपचार क्षमता के साथ यह एक विशाल प्रबंधन चुनौती बन चुकी है। इस चुनौती का समाधान करने के लिये अपशिष्ट जल का कृषि भूमि में उपयोग एक अच्छा विकल्प साबित हो सकता है। हमारे देश में कई जगहों पर अपशिष्ट जल के उपयोग की विशेष रूप से कम जल की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में बहुत माँग है और आजकल किसानों को कुछ निश्चित मूल्य पर इसको उपलब्ध भी करवाया जा रहा है। वर्ष 1990 में स्ट्रॉस और ब्लुमेंथल द्वारा लगाये गये एक अनुमान के मुताबिक विश्व में लगभग 73,000 हेक्टेयर कृषि क्षेत्र अपशिष्ट जल सिंचाई के अंतर्गत है। नीचे चित्र में यह दिखाया गया है कि कैसे किसान अपनी फसलों में अपशिष्ट जल का उपयोग कर रहा है? अपशिष्ट जल का कृषि में उपयोग करने के लिये किसानों की

अनुपचारित अपशिष्ट जल के साथ सिंचित फसलें

धान की फसल में अपशिष्ट जल की सिंचाई

प्राथमिकता कई कारणों से होती है– जैसे पहला यह जल स्रोत वर्ष भर उपलब्ध रहता है, दूसरा ज्यादातर शहर के निकट क्षेत्रों में इसके कृषि में उपयोग द्वारा प्राप्त फसल उत्पादन के लिये अच्छी कीमत मिल जाती है, और तीसरा इस अपशिष्ट जल में कुछ ऐसे पौषक तत्व मौजूद रहते हैं जिसके कारण इसकी सिंचाई से फसलों की अधिक पैदावार प्राप्त होती है (लेकिन यह अपशिष्ट जल के उपयोग के घटकों पर निर्भर करती है)। इन्हीं कारणों की वजह से आजकल कृषि में अपशिष्ट जल की उपयोगिता दिन प्रतिदिन लोकप्रिय होती ही जा रही है।

लेकिन इन सब फायदों के बावजूद, अपशिष्ट जल में कई रोगजनक सूक्ष्म जीवाणु (बैक्टीरिया, वायरस, परजीवी) पाये जाते हैं और भारी धातुएं भी मौजूद रहती हैं जिसकी वजह से उपयोगकर्ताओं के लिये संभावित स्वास्थ्य संबंधी खतरा पैदा हो सकता है। इसलिये, इस संबंध में अपशिष्ट जल से सिंचाई के लिये फसलों का विवेकपूर्ण चुनाव करना बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। इस जल की सिंचाई के उपयोग से अधिकतर पत्तेदार (लाल साग, पालक आदि) और जड़ वाली सब्जियों (गाजर, चुकंदर, शलजम आदि) को उगाने से बचना चाहिये जबकि फलों वाली फसलें अपशिष्ट जल की सिंचाई के लिये सुरक्षित होती हैं। कुछ फसलों (जैसे क्रूसीफेरी जाति) में भारी धातुओं और दूषित पदार्थों को जल और मृदा से कम करने की क्षमता होती है इसको बायो रेमेडियसन कहा जाता है। यह फसलें अपनी जड़ों में भारी धातुओं को जमा कर सकती हैं जिनको बाद में मृदा से आसानी से हटाया जा सकता है। अपशिष्ट जल की सिंचाई के लिये प्राथमिकता हमेशा गैर–खाद्य फसलों और पेड़ों को ही दी जानी चाहिये।

भाकृअनुप–भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर, ओडिशा द्वारा हाल ही में फसलों की सिंचाई में अपशिष्ट जल के सुरक्षित उपयोग के लिये एक अनुसंधान शुरू किया गया जहाँ तिलहन फसलों पर अपशिष्ट जल के दो स्तरों को ताजा जल के संयोजन के साथ उपयोग में लेकर इसके प्रभावों का अध्ययन किया गया। इस अनुसंधान के प्रारंभिक परिणामों से पता चला कि 4: 1 अनुपात में अपशिष्ट जल और मीठे जल का संयोजी उपयोग फसलों की अधिक उपज प्राप्त करने में मदद करता है साथ ही मृदा और फसलों में कोई भी गड़बड़ी और प्रदूषण की समस्या नहीं होती है। अधिक दीर्घकालिक अध्ययन इन परिणामों पर बेहतर और गहन रोशनी डाल सकता है।

निष्कर्ष

वर्ष 2050 में भी भारत में कृषि लोगों की जीविका का मुख्य आधार बनी रहेगी। हालांकि, स्पष्ट रूप से जो बदलेगा वह है अलग अलग क्षेत्रों द्वारा जल का उपयोग जो कि देश में हमारे प्रयास यानि 'प्रति जल बूंद–अधिक फसल उत्पादन' के मंत्र में परिलक्षित होता है। अपशिष्ट जल एक बहुमूल्य संसाधन है और इसको कृषि में उपयोग किया जा सकता है, लेकिन यह तभी संभव है जब उचित फसल चयन और अपशिष्ट जल के साथ मीठे जल के संयोजी उपयोग से सुरक्षित समाधान प्रदान किया जाये ताकि ताजे जल की बचत प्राप्त हो सके।

तिलहन फसलों में अपशिष्ट जल एवं ताजा जल का संयोजी उपयोग

खरीफ धान के बाद फसल की उत्पादकता को बढ़ाने और आय में वृद्धि के लिये कम से कम सिंचाई के साथ सूरजमुखी की खेती

सन्मय कुमार पात्र

कृषि जल प्रबंधन पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान योजना केन्द्र (भाकृअनुप)
बिधान चन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, ग्यासपुर, नाडिया, पश्चिम बंगाल

पृष्ठभूमि

सूरजमुखी एक उभरती हुई तिलहन फसल है जिसमें खरीफ धान की फसल के बाद एक आपातकालीन (Contingent) फसल के रूप में समायोजित होने की अनुकूलन क्षमता है या यूं कह सकते हैं कि यह फसल नीची भूमि के पारिस्थितिक तंत्र में अधिक जल आवश्यकता वाली धान की फसल का एक बहुत ही अच्छा विकल्प है। किसी भी फसल की उपज की क्षमता और लाभप्रदता उचित सिंचाई की पद्धतियों और समय पर बुवाई की विधि को अपनाने पर निर्भर करती है। पूर्वी भारत के निचले इंडो–गंगा मैदानी क्षेत्रों में खरीफ धान की फसल के बाद अवशिष्ट नमी का उपयोग करते हुये संसाधन गरीब किसान आम तौर पर रबी मौसम में दूसरी फसलों को उगाते हैं लेकिन यहाँ अनुचित सिंचाई पद्धतियों और सस्य विधियों के कारण इन फसलों की उत्पादकता काफी कम प्राप्त होती है। इसी बात को ध्यान में रखते हुये उचित सिंचाई योजना के साथ सूरजमुखी की फसल के लिये शीघ्र बुआई की रणनीति एक व्यवहार्य विकल्प साबित हो सकता है जो इस फसल की अधिकतम उपज, जल उत्पादकता और उच्च लाभप्रदता को बनाये रख सकता है।

तकनीक का सुझाव

- खेत में लगभग 4–5 बार जुताईयों के साथ हर जुताई के बाद मृदा को पाटा लगाकर समतल कर देना चाहिये।
- दिसंबर के दूसरे सप्ताह के दौरान 60 सेमी x 30 सेमी की दूरी पर रोग मुक्त स्वस्थ किस्म PAC 36 की बुआई करनी चाहिये।
- खेत की अंतिम भूमि तैयारी के दौरान 10 टन/हेक्टेयर की दर से अच्छी तरह विघटित गोबर की खाद को मृदा के साथ मिलायें।
- बुआई के बाद अच्छे बीज अंकुरण और एक समान पौधों के स्थापन के लिये 20 मिमी की गहराई की एक बुआई पूर्व सिंचाई लागू करें।
- उर्वरकों की सुझाई गई खुराक 60:40:40 किग्रा/हेक्टेयर की दर से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाशियम का प्रयोग करें।
- बुवाई से ठीक पहले फॉस्फोरस एवं पोटाशियम उर्वरकों की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा का बेसल खुराक के रूप में प्रयोग करें और शेष बची नाइट्रोजन की आधी मात्रा को बुआई के 30 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग करें।
- खेती के दौरान लगभग 50 मिलीमीटर की गहराई की सिंचाई के साथ बुआई के 45 और 90 दिनों पर कम सिंचाई जल से दो सिंचाइयाँ करें।
- अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये अप्रैल के दूसरे सप्ताह में फसल की कटाई कर लेनी चाहिये।

उपज एवं लाभ

रबी मौसम में सूरजमुखी की फसल की शीघ्र बुवाई (14 दिसंबर) करने पर तथा बुआई के 45 और 90 दिनों के बाद दो सिंचाइयाँ (प्रत्येक 100 मिलीमीटर) करने पर 5.48 टन/हेक्टेयर) की दाना उपज प्राप्त होती है यह उपज देर से बुवाई (28 जनवरी) करने तथा 15–18 दिन के अंतराल पर चार सिंचाइयाँ प्रदान करने (3.33 टन/हेक्टेयर) की तुलना में 64.6% अधिक थी जो समान्यतया किसानों द्वारा अपनायी गई थी। देर से बुवाई और अधिक सिंचाई की स्थिति में जल उपयोग दक्षता केवल 14.2 किलो/हे–मिमी) ही प्राप्त होती है जो शीघ्र बुवाई एवं दो सिंचाइयों के साथ बढ़कर 46.7 किग्रा/हेक्टेयर–मिमी तक हो गई। इस फसल की शीघ्र बुआई करने के कारण कम से कम दो सिंचाईयों के जल यानि 100 मिलीमीटर सिंचाई जल को बचाया जा सकता है। किसानों द्वारा अपनायी गई परंपरागत विधि (शुद्ध लाभ ₹ 22930/हेव लाभ:लागत अनुपात 1.85) के मुकाबले शीघ्र बुआई एवं दो सिंचाइयाँ देने पर अधिकतम शुद्ध लाभ ₹ 56680/हेक्टेयर और 3.22 लाभ: लागत अनुपात प्राप्त किया जा सकता है। इन क्षेत्रों के लिये यह सबसे अच्छा वैकल्पिक व्यवहार्य दृष्टिकोण है जो सूरजमुखी की फसल से अधिकतम दाना उपज देता है और साथ ही साथ पूर्वी भारत के किसानों को अधिक लाभांश भी देता है। इस प्रकार खरीफ धान की पैदावार के बाद रबी मौसम में सूरजमुखी की फसल की बुआई करना इसके अनुकूलन को दर्शाता है। अतः खरीफ धान के बाद

शीघ्र बुआई तथा कम से कम सिंचाई के साथ सूरजमुखी की खेती किसानों के लिये बहुत ही लाभकारी साबित हो सकती है जो किसानों को कृषि से दोगुनी आय प्राप्त करने के लक्ष्य को साकार कर सकती है।

खरीफ धान के बाद रबी मौसम में शीघ्र बुआई के साथ सूरजमुखी की खेती

नमी तनाव: सब्जी वर्गीय फसलों पर इसका प्रभाव एवं संभावित प्रबंधन विकल्प

तानिया सेठ[1], पार्थ देब रॉय[2], ओ.पी. वर्मा[2] एवं अभिजीत सरकार[2]

[1] भाकृअनुप – पूर्वी क्षेत्र के लिये अनुसंधान परिसर, क्षेत्रीय केंद्र, रांची, झारखंड
[2] भाकृअनुप–भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर, ओडिशा

प्रस्तावना

ऐसे कृषि क्षेत्र जो प्राय: सूखे की समस्या से प्रभावित रहते हैं वो सभी क्षेत्र सूखे के कारण 50% तक या इससे भी अधिक फसल उपज में हानि का अनुभव कर सकते हैं। दुनिया की 35% से अधिक कृषि भूमि की सतह को शुष्क या अर्ध–शुष्क माना जाता है जो अधिकांशत: कृषि उपयोग के लिये अपर्याप्त वर्षा प्राप्त करती है। भारत के लगभग दो तिहाई भौगोलिक क्षेत्र में 1000 मिमी से कम वर्षा (असमान और अनियमित वितरण) होती है। वर्तमान में भारत के लगभग 140 मिलियन हेक्टेयर के बुआई क्षेत्र में से 68% क्षेत्र सूखे की स्थिति के प्रति अधिक संवेदनशील है और लगभग 50% ऐसे क्षेत्र को 'गंभीर' श्रेणी के रूप में वर्गीकृत किया गया है जहाँ सूखे की आवृत्ति लगभग नियमित रूप से घटित होती रहती है। दुनिया का लगभग 36% भूमि क्षेत्र अर्ध–शुष्क श्रेणी में आता है जहाँ सालाना केवल 5 से 30 इंच तक वर्षा होती है और शेष 64% क्षेत्र फसल के मौसम (हर्ड, 1976) के दौरान अस्थायी सूखे की स्थिति से ग्रसित रहता है। वैश्विक स्तर पर संभावित कृषि योग्य भूमि का लगभग एक तिहाई क्षेत्र अपर्याप्त जल की आपूर्ति से ग्रस्त है और अधिकांश शेष क्षेत्र में समय–समय पर सूखा पड़ने पर फसलों की पैदावार कम हो जाती है (क्रेमर, 1980)। अफ्रीका, एशिया और पूर्वी क्षेत्रों में किसानों के लिये जल की कमी एक महत्वपूर्ण समस्या है, जहाँ कृषि के लिए 80–90% दोहित जल का उपयोग किया जाता है (एफ.ए.ओ., 2000)।

विभिन्न अजैविक तनाव के बीच सूखा या नमी तनाव दुनिया भर में फसलों की पैदावार और उत्पादकता को प्रभावित करने वाला प्रमुख सीमित कारक है। प्रकृति में जल आमतौर पर पौधों की वृद्धि के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है। समान्यतया, पौधे की प्रजातियों का प्रदर्शन जल के अधिग्रहण, पौषक तत्वों के ग्रहण और कार्बन स्थिरीकरण पर निर्भर करता है साथ ही साथ इन सभी पहलुओं को कैसे विनियमित किया जाये इस पर भी निर्भर करता है। तरल रूप में जल विलयों के प्रसार और मासफ्लो की अनुमति देता है और इसी कारण यह संपूर्ण पौधों में पौषक तत्वों और उपापचयों के हस्तांतरण और वितरण के लिये बहुत ही आवश्यक है। जल तनाव के लिये पौधों की प्रतिक्रिया मुख्य रूप से तनाव की गंभीरता और अवधि और मुख्य रूप से पौधों की वृद्धि के स्तर पर निर्भर करती है। पौधों की वृद्धि और विकास के लिये आवश्यक कई कार्यकी और जैव रासायनिक प्रक्रियायें सूखे से प्रभावित होती हैं और जल की कम उपलब्धता के दौरान झिल्ली विघटन और एंजाइम निष्क्रियता को रोकने के लिये पौधे आणविक, सेलुलर और सम्पूर्ण स्तर पर सूखा तनाव के प्रति विभिन्न रक्षा तंत्रों को प्रदर्शित करते हैं।

भारत अपने कुल 9.3 मिलियन हेक्टेयर (एन.एच.बी., 2014) के क्षेत्र से 162.89 मिलियन टन सब्जियों का उत्पादन करता है। पिछले 3 दशकों से हमारे देश में सब्जियों की उत्पादकता (1.65 गुना) में काफी बढ़ोतरी हुई है। वर्तमान में भारत दुनिया में चीन के बाद सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। दुनिया के सब्जी बाजार में भारत का हिस्सा लगभग 16% है। भारत में काफी विविध प्रकार की जलवायु की परिस्थितियाँ पायी जाती हैं जो 50 से अधिक देशी और विदेशी सब्जियों के उत्पादन को सक्षम बनाती है और यह देश सब्जियों की जैव विविधता में भी समृद्ध है और इसी कारण कई सब्जियों की उत्पत्ति का प्राथमिक/माध्यमिक केंद्र भी है। इन सभी उपलब्धियों के बावजूद भारत में सब्जियों की प्रति व्यक्ति खपत विश्व खाद्य संगठन (WHO) मानकों (एफएओ द्वारा अनुशंसित 300 ग्राम/दिन/व्यक्ति) की क्षमता के विरुद्ध 180 ग्राम/दिन/ व्यक्ति) ही है। लोहा तत्व की कमी से हमारे देश में एनीमिया की समस्या फैली हुई है जो वयस्कों में 45% से लेकर महिलाओं और बच्चों में 70% या इससे भी अधिक व्यापक है। इसलिये, संतुलित आहार के माध्यम से पौषण प्रदान करके हमारे देश की आबादी को स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करने की तत्काल आवश्यकता है।

सब्जियाँ प्रोटीन, विटामिन, खनिज, खाद्य फाइबर, सूक्ष्म पौषक तत्वों, एंटीऑक्सिडेंट्स और फाइटोकेमिकल्स आदि का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। हमारे शरीर में सूक्ष्म पौषक तत्वों की कमियों पर काबू पाने के लिये सब्जियाँ सबसे अच्छा स्रोत हैं और इसके अलावा सब्जियों से खाद्य

फसलों की तुलना में छोटे–बड़े किसानों को प्रति हेक्टेयर कृषि भूमि से बहुत ज्यादा आय और नौकरियां प्राप्त होती हैं। आम तौर पर सब्जियाँ पर्यावरण की चरम घटनाओं के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं। इस प्रकार उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में फसलों की कम पैदावार के लिये अधिक तापमान और मृदा में सीमित नमी जैसे प्रमुख कारण जिम्मेदार हैं और इन जलवायु परिवर्तनों का प्रभाव आगे और भी अधिक बढ़ेगा। विश्व में कुल जल की आपूर्ति पहले से ही सीमित होती जा रही है इस प्रकार जनसंख्या के दबाव में वृद्धि और जल संसाधनों के लिये लगातार बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण सूखे का प्रभाव और भी अधिक गंभीर हो जाएगा (मैकविलियम, 1986)। दुनिया भर में अनुचित जल का उपयोग और विकासशील देशों में अनुचित जल वितरण प्रणाली के कारण आगे जल की उपलब्धता में और भी कम हो सकती है। भविष्य में जल की उपलब्धता जलवायु परिवर्तन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होने की उम्मीद है और इस गंभीर जल तनाव की स्थिति से फसलों (मुख्य रूप से सब्जियों) की उत्पादकता विशेष रूप से प्रभावित होगी। सूखा के तनाव से मृदा में घुलनशील लवणों की सांद्रता में वृद्धि होती है जिससे पौधों की कोशिकाओं से जल ओसमोटिक प्रवाह द्वारा बाहर निकल जाता है। इससे पौधों की कोशिकाओं में घुलनशील लवणों की सांद्रता में वृद्धि हो जाती है जिससे वाटर पोटेन्शियल कम हो जाता है और झिल्ली टूट जाती है और कोशिका की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया जैसे प्रकाश संश्लेषण में बाधा उत्पन्न हो जाती है। सब्जियाँ प्राय: रसदार (सकुलेंट) प्रवृति की होती हैं जिनमें 90% से ज्यादा जल की मात्रा होती है जो विशेष रूप से फूलों के बनने से लेकर बीजों के विकास की अवस्था के दौरान सूखे के तनाव के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं।

सूखा यहाँ तक कि उर्वरक प्रयोग किये गये क्षेत्रों में भी पौषक तत्वों की कमियों का कारण बन सकता है जो मृदा के मैट्रिक्स से अवशोषित जड़ों की सतह में पौषक तत्वों के डिफ्यूजन को कम कर देता है और पत्तियों तक स्थानान्तरण की दर को भी कम कर देता है। सूखे के लक्षण एक प्रकार से लवण तनाव के समान होते हैं क्योंकि जड़ क्षेत्र में लवणों की उच्च सांद्रता ऑसमोटिक प्रभाव के कारण जड़ों से जल की हानि को बढ़ा देती है। कई क्षेत्रों में सूखा और लवणता की समस्या पहले से ही व्यापक रूप से फैली हुई है और वर्ष 2050 (अशरफ, 1994) तक सभी कृषि क्षेत्रों की 50% से अधिक भूमि में लवणता की गंभीर समस्या पैदा होने की उम्मीद की जा सकती है।

पौधों पर नमी तनाव का प्रभाव

जल तनाव कोशिका विभाजन के बजाय पौधों की कोशिका वृद्धि पर अधिक प्रभाव डालता है और फसलों में जड़ विकास की तुलना में शाखाओं का विकास अधिक प्रभावित होता है। आनुवंशिक स्तर पर पौधों में सूखा के तनाव के प्रतिरोध को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है अर्थात सूखे से बचाव, सूखे से दूरी और सूखा की सहिष्णुता (लियोनार्डिस एट अल, 2012)।

- सूखे से बचाव पौधों की एक क्षमता है जहाँ मृदा और पौधों में गंभीर जल तनाव से पहले पौधे अपना जीवन चक्र को पूरा कर लेते हैं। इस तंत्र में तेजी से फीनोलॉजिकल विकास शामिल होता है अर्थात् फूलों की शुरुआत और परिपक्वता, जल की कमी की गंभीरता पर पौधों की वृद्धि की अवधि में बदलाव, जीवन चक्र में कमी आदि (चावेज और ओलिवेरा, 2004) (तालिका 19)।
- सूखे से दूरी यानि सूखे की स्थिति के तहत ऊतकों द्वारा जल क्षमता को बनाये रखने की पौधों की क्षमता है। यह तंत्र पौधों में मोर्फोलोजिकल बदलावों से जुडा हुआ होता है जैसे कि पत्ती क्षेत्र में संकुचन, पत्ती की कोशिका की दीवारों पर गहनता, रंध्र बंद होना और क्यूटिक्यूलर पदार्थ गठन, व्यापक जड़ पद्धति का विकास और जड़/शाखा अनुपात में वृद्धि आदि (तालिका 19)।
- सूखा सहिष्णुता यानि कम ऊतक जल क्षमता पर भी अपने सामान्य कार्यों को बनाये रखने की पौधे की स्थिरता है। इस तंत्र में ऑसमोटिक समायोजन (कोशिका में लवण संचय) के माध्यम से टृगर का संतुलन एवं कोशिका के लचीलेपन में वृद्धि शामिल होता है लेकिन कोशिका के आकार में कमी और प्रोटॉप्लाज्मिक सहिष्णुता के द्वारा डेसीकेशन सहिष्णुता भी शामिल होती है।

नमी के तनाव के परिणामस्वरूप एब्सिसिक एसिड (एबीए) और प्रोलीन, ग्लूकोज, फ्रुक्टोस, सुक्रोज, मैलिक एसिड, एस्कॉर्बिक एसिड और साइट्रिक एसिड की सांद्रता में वृद्धि होती है जिससे पौधे मुरझाने लग जाते हैं। प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन का अति उत्पादन और रेडिकल स्केवेंजिंग यौगिकों का गठन जैसे कि एस्कॉर्बेट और ग्लूटाथिओन आदि इसके प्रतिकूल प्रभाव को और भी अधिक बढ़ाते हैं। हालांकि, क्लोरोफिल के विपरीत, पानी के तनाव के तहत पौधों में जेंथोंफिल वर्णक जैसे जिक्सेनथीन और एन्थेरेक्साथिन में वृद्धि होती है (लिस्सार एट अल, 2012)।

तालिका 19. सिंचाई और सूखा के प्रति संवेदनशील वृद्धि अवस्थायें

फसलें	संवेदनशील वृद्धि अवस्थायें	जल की कमी का प्रभाव
टमाटर	फूल बनना, फल सेट एवं प्रत्येक कटाई के बाद	फूल गिरना, निषेचन में कमी, फल आकार में कमी, फल में दरार, एवं केल्सियम की कमी का रोग यानि ब्लोसम एंड रोट
बैंगन	फूल बनना, फल सेट एवं प्रत्येक कटाई के बाद	फलों में खराब रंग के विकास के साथ उपज में कमी
मिर्च व शिमला मिर्च	फूल बनना एवं फल सेट	नए फूल एवं फलों का गिरना
ककड़ी	फूल की कली का निर्माण एवं फलों का शीघ्र विकास	विकृत और गैर–सक्षम पराग कण, कडवाहट और फल में विकृति
तरबूज	फूल की कली का विकास और प्रारंभिक फल विकास	फल की खराब गुणवत्ता (टीएसएस में कमी, चीनी व एस्कॉर्बिक एसिड में कमी), नाइट्रेट सामग्री में वृद्धि
खरबूजा	फूल की कली विकास और प्रारंभिक फल विकास	खराब फल की गुणवत्ता (टीएसएस में कमी, चीनी व एस्कॉर्बिक एसिड में कमी), नाइट्रेट सामग्री में वृद्धि
पत्ता गोभी	हैड का निर्माण एवं विकास	टिप का जलना और हैड का विभाजन
फूल गोभी	कर्ड का विकास एवं विस्तार	ब्राउनिंग और बटनिंग जैसे कार्यकी विकार
मूली	जड़ों की वृद्धि	जड़, खराब गंध, जड़ों में हानिकारक नाइट्रेट्स का संचय और खराब विकास
प्याज	बल्ब का विकास एवं विस्तार	बल्ब का विभाजन और दोहरीकरण, खराब भंडारण जीवन
आलू	स्टोलन गठन, कंद और कंद का विस्तार	खराब कंद की वृद्धि और उपज, विभाजन
मटर	फूल की कली का विकास और फली भरने की शुरुआत	जड़ संलयन और पौधे की वृद्धि में कमी, फली में खराब दानों का भराव
पत्तियों वाली सब्जियाँ	पूरी वनस्पति अवधि	पत्तियों की कठोरता, खराब पत्तों की वृद्धि, नाइट्रेट्स का संचय

स्रोतः केम्बल एवं सांडर्स (2000) व हाजरा व सोम (2006) के अनुसंधान से रूपांतरित

पौधों में नमी तनाव का प्रबंधन

जल बचत सिंचाई प्रबंधनः दुनिया की कुल सिंचित भूमि में से लगभग 80% से अधिक क्षेत्र में परंपरागत सतही सिंचाई विधि का उपयोग किया जाता है लेकिन देखा जाये तो क्षेत्रीय स्तर पर इसकी दक्षता केवल 40–50% (वॉन वेस्टारप 2004) ही है। जबकि ड्रिप सिंचाई पद्धति में 50–80% तक सिंचाई जल की बचत प्राप्त होती है क्योंकि इसमें छोटी छोटी प्लास्टिक की नलिकाओं के माध्यम से सीधे पौधों को सिंचाई जल प्रदान किया जाता है और अपवाह और डीप परकोलेशन के कारण होने वाली सिंचाई जल की हानि कम हो जाती है। आमतौर पर पौधों के वाष्पोत्सर्जन (ET) द्वारा प्रति यूनिट जल की खपत से उत्पादन 10–50% तक बढ़ जाता है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली द्वारा कम श्रम के साथ पौधों के प्रति इकाई क्षेत्र को अधिक सिंचित किया जा सकता है।

पलवारः मृदा की नमी का संरक्षण, वाष्पीकरण को कम करने, मृदा के क्षरण को रोकने, खरपतवारों की वृद्धि को कम करने और उच्च तापमान एवं मृदा के साथ सीधे संपर्क से सब्जियों की फसलों की रक्षा करने के लिये पलवार का प्रयोग किया जाता है। जैविक और अजैविक दोनों प्रकार की पलवार का प्रयोग अधिक मूल्य वाली सब्जियों के उत्पादन में आम बात है। जैविक पलवार का प्रयोग मृदा की उर्वरता, संरचना और अन्य गुणों को बढ़ाने में मदद कर सकता है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के निचले इलाकों में जहाँ तापमान

अधिक है वहाँ धान की पुआल की पलवार के साथ काले भूरे रंग की प्लास्टिक की पलवार के संयोजन की सिफारिश की जा सकती है (ए.वी.आर.डी.सी., 1990) क्योंकि यह सूर्य की विकिरण को मृदा की सतह तक पहुँचने से बचाता है और धान का पुआल, प्लास्टिक को सीधे सूरज की रोशनी से बचाता है जिससे दिन के दौरान मृदा के तापमान में अधिक वृद्धि नहीं हो पाती है।

ग्राफ्टिंग: पूर्वी एशिया में 20 वीं शताब्दी के दौरान सब्जियों की फसलों में ग्राफ्टिंग विधि को तैयार किया गया था और अब सामान्यत: जापान, कोरिया और कुछ यूरोपीय देशों में अब इसका अभ्यास लगातार किया जाता है। वर्ष 1950 के दशक में बैंगन की फसल को ग्राफ्टिंग से तैयार किया गया था जिसके बाद वर्ष 1960 और वर्ष 1970 (एडेलस्टीन, 2004) में ककड़ी और टमाटर के लिये भी कलम बनाना शुरू किया गया। ग्राफ्टिंग में एक ही पौधे का उत्पादन करने के लिये दो जीवित पौधों के हिस्सों (रूटस्टॉक और सियोन) को एक साथ जोड़ना शामिल होता है। इसको प्राथमिक रूप से फलदार सब्जियों जैसे कि टमाटर, बैंगन और कुकरबिट्स में उत्पादन को प्रभावित करने वाले मृदा जनित रोगों को नियंत्रित करने के लिये इस्तेमाल किया जाता है। जब विशिष्ट प्रकार के सहिष्णु गुण वाले रूटस्टॉक्स का उपयोग किया जाता है तो यह ग्राफ्टिंग विधि मृदा से संबंधित पर्यावरणीय तनावों जैसे कि सूखा, लवणता, मृदा का कम तापमान और बाढ़ के लिये सहिष्णुता प्रदान कर सकती है।

सूखा सहिष्णु सब्जियों के जीनोटाइप्स: कुछ जंगली प्रजातियाँ मृदा में नमी की सहनशीलता को सहन करने की क्षमता रखती हैं और इन जंगली प्रजातियों से उपयोगी जीन को खेती योग्य फसलों की प्रजातियों में शामिल किया जाना चाहिये ताकि नमी तनाव के तहत भी ऐसी किस्मों से अधिक उपज प्राप्त की जा सके। कुछ महत्वपूर्ण सूखा सहिष्णु प्रजातियों और इनके जीनोटाइप्स को तालिका 20 में दर्शाया गया है।

तालिका 20: सब्जियों की सूखा सहिष्णु प्रजातियाँ और इनके जीनोटाइप्स

सब्जियों वाली फसलें	सूखा सहिष्णु प्रजातियाँ/ जीनोटाइप्स
टमाटर	लाइकोपर्सिकोन हेब्रोचेट्स, एल. पिंपीनेल्लीफोलोइयम, एल. एस्कूलेंटम वार. सेरसीफोर्मी, एल. हिर्सुटम, एल. चिज्मेनी, एल. पेनेली, एल. चीलेंस, एल. सीटिएन्स, एस. पेरुवियनम, अर्का विकास, IIHR–2274
बैंगन	सोलेनम माइक्रोकारपोन, एस. गिलो, एस. मैक्रोस्पर्मा, एस. इंटेग्रीफोलियम, SM– 1, SM– 19, SM– 30, सुप्रीम
मिर्च	सी. चाईनेन्स, सी. बेकेटम वार. पेंडुलम, सी. एक्सिमियम, अर्का लोहित, IIHR – सेल–132
आलू	सोलेनम एकुल, एस. डेमिस्सम, एस. स्टेनोटोनम, एस. अजनहुइरी, एस .कर्टिलोबम, एस. चकोइन्स, कुफरी सिंधूरी, कुफरी शीतमान
भिंडी	एबेल्मोस्कस कैल्लेई, , ए. रुगोसस, ए. ट्यूबरोसिस
प्याज	एल्लियम फिस्टुलोसम, अर्का कल्याण
फेंच बीन	फेजियोलस एकूटीफोलियस
तरबूज	सीटूलस कोलोसिंथिस (एल) चारड
ककड़ी	INGR-98018
विंटर स्क्वेश	कुकुरबीटा मेक्सिमा
कुकुमिस प्रजाति	कुकुमिस मेलो वार. मोमोर्डीका, कुकुमिस मेलो वार. केलोसस, कुकुमिस प्युबिसेन्स, VRSM- 58, INGR-98013, INGR-98015, INGR-98016, CU 159, CU 196, AHK- 200, SKY/DR/RS-101, आर्य
केसावा	CE-54, CE-534, CI-260, CI-308, CI-848, नारुकु–3,Ci-4, Ci-60, Ci-17, Ci-80
शक्करकंद	VLS6, IGSP 10, IGSP 14, श्री भद्रा

स्रोत: कुमार एट आल, 2012 से रूपांतरित

वर्तमान के दौरान विज्ञान में प्रगति के साथ विभिन्न उपकरणों/तकनीकों का उपयोग सूखा सहिष्णु जीनोटाइप्स की पहचान या छंटनी करने के लिये किया जाता है। कुछ महत्त्वपूर्ण उपकरणों/तकनीकों की चर्चा तालिका 21 में प्रस्तुत की गई है।

तालिका 21. पौधों में सूखे के प्रति सहिष्णुता के लिये छंटनी विधियाँ

उपयोग किये गये उपकरण/ तकनीकें	छंटनी का उद्देश्य
इन्फ्रारेड थरमोमेट्री	दक्ष जल ग्रहण
डिफ्यूजन पोरोमेट्री तकनीक	पत्तियों में जल की चालकता
मिनी–राइजोट्रोन तकनीक	जड़ों का मृदा में प्रवेश, खेत में वितरण एवं घनत्व
इन्फ्रारेड एरियल फोटोग्राफी	डीहाईड्रेसन पोस्टपोनमेंट
कार्बन आइसोटोप डिसक्रीमिनेसन	जल उपयोग दक्षता में वृद्धि
ड्रौट इंडेक्स मेजरमेंट	कुल उपज एवं फलों की संख्या
विजुअल स्कोरिंग या मेजरमेंट	परिपक्वता, लीफ मोल्डिंग, पत्ती की लंबाई, कोण, विन्यास, जड़ की मोरफोलोजी एवं अन्य मोर्फोलोजिकल गुण

स्रोत: कुमार एट आल, 2012 से रूपांतरित

निष्कर्ष

मानव शरीर में सूक्ष्म पौषक तत्वों की कमियों को पूरा करने के लिये सब्जियाँ सबसे अच्छा स्रोत हैं और छोटे–बड़े किसानों को खाद्य फसलों की तुलना में सब्जियों की बुआई से प्रति हेक्टेयर अधिक आय प्राप्त होती है और रोजगार सर्जन भी अधिक प्राप्त होता है। हाल ही के वर्षों में सब्जियों का विश्वव्यापी उत्पादन दोगुना हो गया है और सब्जियों में वैश्विक व्यापार का मूल्य भी खाद्य फसलों से अधिक हो गया है। वैश्विक स्तर पर जलवायु में महत्वपूर्ण परिवर्तन नमी तनाव को प्रभावित करेंगे जिसके परिणामस्वरूप सब्जियों की खेती भी प्रभावित होगी। अत: जल संसाधनों की उपलब्धता में बढ़ती कमी की समस्या के कारण सूखा सहिष्णुता और अधिक जल उपयोग दक्षता वाले जर्मप्लाज्म का इस्तेमाल आवश्यक हो गया है। अधिकांश क्षेत्रों के लिये ये दोनों ही गुण अनिवार्य हैं। स्वाभाविक रूप से सूखा तनाव और नियंत्रित वातावरण के तहत सूखा सहिष्णुता के लिये जीनोटाइप्स की स्क्रीनिंग विशेष रूप से फसलों के पौधों में महत्वपूर्ण नमी तनाव की अवधि के दौरान सहिष्णु और संवेदी जीनोटाइप्स के बीच अंतर की जानकारी जानने के लिये बहुत ही आवश्यक है। इससे संबन्धित अनुसंधान को नवीनतम जीनोमिक्स संसाधनों के साथ जोड़ना चाहिये जिसमें मात्रात्मक आनुवंशिकी, जीनोमिक्स सहित फसलों के पौधों के जीनोटाइप्स एवं उगाये गये वातावरण के बीच अंत:क्रियाओं की कार्यिकी और जैव रासायनिक समझ के साथ–साथ फसल सुधार की बेहतर ढंग से सूचना प्राप्त करना बहुत ही जरूरी है। पर्यावरण परिवर्तनशीलता को कम करने, आगे की आबादी के आकार को कम करने और चयन को सुविधाजनक बनाने के द्वारा आणविक मार्करों का उपयोग प्रजनन कार्यक्रमों की दक्षता बढ़ाने की संभावना प्रदान करता है। सब्जियों की अलग–अलग जंगली प्रजातियों में नमी तनाव के प्रति सहिष्णुता की संभावना रहती है क्योंकि इनके जीनोटाइप्स न्यूनतम नमी वाली स्थितियों में उगने की क्षमता रखते हैं (टॉरेसिलास एट अल, 1995)। जंगली प्रजातियों के फायदेमंद गुणों को अच्छी सस्य विशेषताओं के साथ के साथ फसलों की व्यावसायिक किस्मों में मिलाया जा सकता है (अशरफ, 2010)।

संदर्भ

अशरफ 1994. पौधों में लवणता की सहिष्णुता के लिये प्रजनन। क्रिटीकल रिव्युज ऑन प्लांट साइंस, 13: 17–42 ।

अशरफ, एम. 2010. पौधों में सूखा सहिष्णुता पैदा करना: वर्तमान प्रगति। बायोटेक्नोलोजी एडवांसेस, 28 (1): 169–183 ।

ए.वी.आर.डी.सी. 1990. सब्जी उत्पादन प्रशिक्षण मैनुअल। एशियाई वनस्पति अनुसंधान और प्रशिक्षण केंद्र शानुआ, तैनान, पृष्ठ 447 ।

चावेज, एम.एम. और ओलिवेरा 2004. वाटर डेफीसिट के प्रति पौधों का लचीलापन तंत्र: जल बचत कृषि की संभावनाएं। जर्नल ऑफ एक्सपरिमेंटल बॉटनी, 55: 2365–2384 ।

एडेलस्टीन, एम. 2004. सब्जी वाली फसलों के ग्राफ्टिंग तैयार करना: संभावना व समस्याएँ। एक्टा हॉर्टिकल्चर, 65 ।

एफ.ए.ओ. 2000. जल सुरक्षा में नये आयाम: 21 वीं सदी में समाज और पारिस्थितिकी सेवा। रोम:, खाद्य और कृषि संगठन, संयुक्त राष्ट्र भूमि और जल विकास विभाग।

हाजरा, पी. और सोम, एम.जी. 2006. वनस्पति विज्ञान। कल्याणी पब्लिशर्स पृष्ठ 76 ।

हर्ड, ई.ए. 1976 सूखा प्रतिरोध के लिये पादप प्रजनन। जल की कमी और पौधों की वृद्धि (एडिटर: टी.टी. कोजलोवस्की) वॉल्यूम IV पृष्ठ 317–353 एकेडेमिक प्रेस, यूएसए।

केंबल, जे.के. और सांडर्स, डी.सी. 2000. सब्जी वर्गीय फसलों के लिये सिंचाई की मूल बातें। अलाबामा सहकारी प्रसार प्रणाली ए.एन.आर.–1169 ।

क्रेमर, पी.जे. 1980. सूखा, तनाव और अनुकूलन की उत्पत्ति। पौधों का जल और उच्च तापमान तनाव के प्रति अनुकूलन। (एडिटर्स: नील, सी. टर्नर, और पॉल जे. क्रेमर) पृष्ठ 7–20। जॉन विले एंड संस, न्यूयॉर्क।

कुमार, आर., सोलंकी, एस.एस. और सिंह, एम. 2012. सब्जियों में सूखे की सहिष्णुता के लिये प्रजनन। वेजीटेबल साइंस, 39 (1): 1–15 ।

लियोनार्डिस, ए.एम.डी., पेट्रारुलो, एम., वीटा, पी.डी. और मस्त्रग्रेल, ए.एम. 2012. वार्षिक फसल प्रजातियों में आनुवंशिक और आणविक पहलुओं के रूप में सूखे के प्रति पौधों की प्रतिक्रिया । इन: एड्वान्सेज इन सेलेक्टेड प्लांट फिजियोलॉजी आस्पेक्ट्स। ज्यूसेप, एम. और बी डिचियो (एडीटर्स) इनटेक पब्लिशर, पृष्ठ 45–74 ।

लिस्सार, एस.आई.एस., मोटाफर्कराजाद, आर., हुसैन एम.एम., रहमान, आई.एम.एम. 2012. पौधों में जल तनाव: कारण, प्रभाव और प्रतिक्रियाएं। इन: इस्माइल, एम., रहमान, एम., हसेगावा, एच. (एडिटर्स)। जल तनाव। रिजेका: इंटेक; पृष्ठ, 1–14 आईएसबीएन 978–953–307– 963– 9 ।

मैकविलियम, जे.आर. 1986. कृषि उत्पादन पर सूखा और लवणता के प्रभावों का राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व। ऑस्ट्रेलियन जर्नल ऑफ प्लांट फिजियोलोजी, 13: 1–13 ।

एन.एच.बी. 2014. भारतीय बागवानी डेटाबेस–2014 ।

टॉरेसीलास, ए., ग्यूलीमे, सी., अलारकोन, जे. जे. और रूइजसांचेज, एम.सी. 1995. जल तनाव और वसूली के तहत दो टमाटर प्रजातियों का जल संबंध। प्लांट साइंस जर्नल, 105: 16 9 –176 ।

वॉन वेस्टारप, एस., चींग, एस. और शियर 2004. नेपाल में कम लागत वाली ड्रिप सिंचाई, परंपरागत ड्रिप सिंचाई और हस्त संचालित सिंचाई के बीच की तुलना। एग्रीकल्चरल वॉटर मेनेजमेंट, 64: 143–160 ।

फसल एवं जल की उत्पादकता तथा आय में वृद्धि हेतु कुसुम-मटर अंतरसस्य फसल पद्धति

◆◆◆

सन्मय कुमार पात्र

कृषि जल प्रबंधन पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान योजना केन्द्र (भाकृअनुप)
बिधान चन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, ग्यासपुर, नाडिया, पश्चिम बंगाल

पृष्ठभूमि

अंतरसस्य फसल पद्धति में एक ही स्थान पर एक ही भूमि के टुकड़े में एक साथ दो या इससे भी अधिक फसलों की खेती की जाती है। अंतरसस्य फसल पद्धति को अपनाकर फसल की समान तुल्य उपज और अर्थिकी को इसमें संसाधनों की उपयोग दक्षता में वृद्धि और मृदा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की वजह से मृदा की उर्वरता में सुधार द्वारा बढाया जा सकता है क्योंकि दलहन फसलें मृदा में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती है। मटर के साथ कुसुम की अंतरसस्य फसल पद्धति से एकल फसल पद्धति की तुलना में प्रमुख लाभ प्राप्त होते हैं जैसे कि फसलों के प्रति इकाई क्षेत्र से उत्पादन में वृद्धि तथा अधिक आर्थिक लाभ के साथ-साथ सिंचाई जल और पौषक तत्वों का दक्ष उपयोग, उत्पादन लागत में कमी, कीटों व रोगों के प्रकोप में कमी आदि हैं। मुख्य फसल की उपज में हानि को कुशलता से द्वितीयक फसल के माध्यम से पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सकता है और अतिरिक्त उपज के साथ परिपूरित भी किया जा सकता है। इन्हीं लाभों की वजह से किसानों के खेत में पूरी अंतरसस्य फसल पद्धति की डिजाइन को सबसे अधिक लाभदायक माना जा सकता है और इसको कम जोखिम भरा फसल प्रबंधन विकल्प भी बनाया जा सकता है।

अंतरसस्य फसल पद्धति की तकनीक का सुझाव

- भूमि की 2-3 बार अच्छी से जुताई द्वारा तैयार करके उसके बाद इसको पाटा लगाकर समतल करना चाहिये।
- अंतिम भूमि तैयारी के दौरान मृदा के साथ 5 टन/हैक्टेयर की दर से गोबर की खाद का प्रयोग करके इसे मृदा में अच्छी तरह से मिलायें।
- नवंबर के तीसरे हफ्ते के दौरान कुसुम की किस्म 'A-300' के बीजों की 60 सेंटीमीटर पर पंक्ति से पंक्ति की दूरी और 30 सेंटीमीटर पर पौधे से पौधे की दूरी के साथ बुआई करनी चाहिये।
- अंतरसस्य फसल मटर की किस्म 'धूसार' के बीजों की कुसुम फसल की दो पंक्तियों के बीच में एक साथ बुआई करें।
- अच्छे बीज अंकुरण और एकसमान पौधों के स्थापन के लिये बुवाई के बाद 20 मिमी की गहराई की बुआई पूर्व सिंचाई लागू करें।
- उर्वरकों की सुझाई गई मात्रा 60:30-30 किलो/हे की दर से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाशियम का प्रयोग करें।
- बुवाई से ठीक पहले फॉस्फोरस एवं पोटाशियम तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा का बेसल खुराक के रूप में प्रयोग करें और शेष बची नाइट्रोजन की आधी मात्रा को बुआई के 30 दिन बाद प्रयोग करें।
- लगभग 21-27 दिनों के अंतराल पर 50 मिलीमीटर गहराई की प्रत्येक सिंचाई की दर से कुल चार सिंचाइयाँ (200 मिलीमीटर सिंचाई जल) को लागू करें।
- मार्च के अंतिम सप्ताह से लेकर अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक फसलों की कटाई करें।

उपज एवं लाभ

कुसुम-मटर अंतरसस्य फसल पद्धति में चार सिंचाइयों के समय-निर्धारण के तहत 0.74 टन/हेक्टेयर की कुसुम तुल्य उपज प्राप्त हुई जो केवल कुसुम की फसल से प्राप्त उपज 0.55 टन/हे की तुलना से 34.1% तक अधिक प्राप्त हुई। इस अंतरसस्य फसल पद्धति में कुल जल उपयोग दक्षता 2.76 किग्रा/हे-मिमी प्राप्त हुई जो कुसुम की एकल फसल से प्राप्त जल उपयोग दक्षता 1.54 किग्रा/हे-मिमी के मुकाबले 79.2% अधिक थी। इस अंतरसस्य फसल पद्धति के साथ अधिकतम शुद्ध लाभ (₹ 11,872/हेक्टेयर) और लाभ: लागत अनुपात (1.95) प्राप्त किया जाता है जबकि किसानों की परंपरागत एकल फसल पद्धति में शुद्ध लाभ एवं लाभ: लागत अनुपात केवल ₹ 8,307/हेक्टेयर और 1.85 ही प्राप्त किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर उसी समान सिंचाई जल की आपूर्ति की स्थिति में कुसुम के साथ मटर की जगह फेबा बीन की वैकल्पिक फसल के रूप में अंतरसस्य के तहत बुआई करने से भी अधिक शुद्ध लाभ (₹ 10,378 /हेक्टेयर) और लाभ: लागत अनुपात (1.84) प्राप्त

किया जा सकता है। कुसुम के साथ यह अंतरसस्य फसल पद्धति एक व्यवहारिक और न्यूनतम जोखिम वाली तकनीक है जो हमारे देश के गरीब किसानों को पर्याप्त मुनाफा प्रदान कर सकती है।

कुसुम–मटर अंतरसस्य फसल पद्धति

सफलता की गाथा

◆◆◆

कम वर्षा वाले क्षेत्रों में नहरी कमांड के तहत ड्रिप सिंचाई पद्धति द्वारा कपास (सफेद सोना) की खेती से किसान के चेहरे पर मुस्कुराहट

राजस्थान के अर्द्ध शुष्क इलाकों में गंग, भाखडा और इंदिरा गांधी नहर परियोजना (IGNP) के नहरी कमांड क्षेत्रों में कपास की फसल अपने अधिक वाणिज्यिक मूल्य के कारण प्रचलित है जिसको वहाँ उसके लोकप्रिय नाम सफेद सोने के रूप में जाना जाता है। इस क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा केवल 300 मिमी और इससे भी कम होती है। वहाँ भूजल लवणीय है और सामान्य तौर पर सिंचाई के लिए उपयुक्त नहीं है। अतः फसल उत्पादन के लिए नहर का जल सिंचाई का एकमात्र स्रोत है। नहरों में वार्षिक सिंचाई की तीव्रता 110% है। इस प्रकार, सिंचाई के जल की आपूर्ति पूरे खेती क्षेत्र की सिंचाई करने के लिए पर्याप्त नहीं है इसके परिणामस्वरूप वहाँ दबाव सिंचाई प्रणाली को अपनाने का बहुत अधिक महत्त्व है। इसके अलावा, इस क्षेत्र के किसानों द्वारा भी दबावयुक्त सिंचाई प्रणाली को मान्यता भी मिल रही है। इस क्षेत्र के एक किसान जिनका नाम श्री विनोद कुमार है वो पद्धति के लोकप्रियता के प्रारंभिक चरण में कपास की फसल में दबाव सिंचाई प्रणाली को अपनाने वालों में से एक है। जल प्रबंधन पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना का श्रीगंगानगर केंद्र ड्रिप सिंचाई पद्धति के तहत कपास की खेती के पूरे पैकेज को विकसित करने में अग्रणी है और जल प्रबंधन की आधुनिक तकनीकों द्वारा कम जल उपयोग के साथ स्थायी कपास उत्पादन के उभरते मुद्दे पर किसानों को प्रशिक्षण उपलब्ध करवाने में भी मदद कर रहा है।

श्री विनोद कुमार पुत्र श्री राम नारायण राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले की पीलीबांगा तहसील के चक 21-एमओडडी गाँव में रहने वाले एक साधारण किसान हैं। वह एक स्नातक हैं और आधुनिक तकनीकों के साथ अपनी भूमि में खेती करने के लिए तैयार हैं। उनके पिता कुल 8.75 हेक्टेयर भूमि के स्वामी हैं और उनका पूरा परिवार खेती पर ही निर्भर है। उनको अक्सर नहरी सिंचाई पद्धति के तहत जल की समस्या का सामना करना पड़ता है क्योंकि इस क्षेत्र में भूजल लवणीय है जो फसलों की सिंचाई के लिए उपयुक्त नहीं है। जल की इस कमी के कारण वे कपास के तहत केवल 3.75 हेक्टेयर क्षेत्र में ही खेती कर पाते थे और शेष भूमि को परती छोड़ देते थे। वह एक दिन अनुसंधान स्टेशन पर गए और वहाँ वैज्ञानिकों के साथ परती भूमि के उपयोग की संभावनाओं पर चर्चा की। अनुसंधान क्षेत्र के प्रयोगों के परिणामों को देखकर एवं चर्चा करके वे बहुत प्रभावित हुए। विनोद कुमार जी के लिए कपास में ड्रिप सिंचाई पद्धति को स्थापित करना ऐसे था जैसे फिर से कपास की खेती करना। इसके परिणामस्वरूप, उन्होंने तकनीकों के विस्तार को जानने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लिया। उन्होंने जो पहला सबक सीखा वो यह था कि कभी इंतजार मत करो बल्कि अपने खेत में शोध के परिणामों को दोहराना शुरू कर दिया।

विनोद कुमार कहते हैं कि सही समय पर जल की उपलब्धता, कपास की खेती में सबसे बड़ी समस्या थी और नहर के जल का भंडारण एकमात्र विकल्प था क्योंकि भूजल लवणीय था और कपास की सिंचाई के लिए उपयुक्त नहीं था। अतः उन्होंने खेत में तालाब का निर्माण करने का निर्णय लिया ताकि वह नहर के जल को संग्रहीत कर सके। इसके परिणामस्वरूप, उसने तालाब (आकार: ऊपर- 96 x 132 फीट, नीचे- 72 x 105 फीट, गहराई-13.5 फीट) का निर्माण शुरू कर दिया। विनोद कुमार कहते हैं कि 'जल हमारे क्षेत्र में जीवन की रेखा है और किसान अब नहर के जल की हर बूंद को संचय करने की आवश्यकता को महसूस कर रहे हैं।' वर्ष 2008 के दौरान उन्होंने कुल 5.75 हेक्टेयर क्षेत्र में ड्रिप प्रणाली को स्थापित किया। उन्होंने वर्ष 2009 में खरीफ मौसम के दौरान अपने पूरे ड्रिप स्थापित क्षेत्र (5.75 हेक्टेयर) में कपास की खेती की। उन्होंने वर्ष 2009 में बीटी कपास से 30 प्रतिशत अधिक उपज और 50 प्रतिशत अधिक जल की बचत प्राप्त की। उन्होने बताया कि कुल 5.75 हेक्टेयर क्षेत्र में ड्रिप सिंचाई पद्धति से

कपास के गांठों की संख्या दोगुनी प्राप्त कर सकता हूँ जैसे कि 3.75 हेक्टेयर क्षेत्र में बाढ़ सिंचाई से उसी मात्रा के सिंचाई पानी से प्राप्त करता था। विनोद कुमार कहते हैं कि पैदावार और प्रति जल बूंद अधिक फसल उत्पादन ही मेरा मुख्य नारा है।

किसान के खेत पर संग्रहीत जल टैंक

ड्रिप सिंचाई प्रणाली के तहत कपास की फसल

रबी 2009 –2010 के दौरान उन्होंने सरसों में लगाई हुई रोटी के तहत सरसों का इस्तेमाल किया। श्री विनोद कुमार ने फिर अपने पूरे खेत को बीटी कपास के साथ खरीफ 2010 के दौरान खरीदा था। उनकी फसल बहुत अच्छी है। वह आगामी रबी सीजन के दौरान सब्जियों को उगाने की योजना बना रहा है। श्री विनोद कुमार बहुत खुश हैं और उनका कहना है कि इस बेल्ट में कपास को बचाने का एकमात्र विकल्प है, क्योंकि उनकी वार्षिक आय दोगुनी हो गई है (तालिका 22)।

तालिका 22. ड्रिप सिंचाई प्रणाली की स्थापना से पहले एवं बाद में उपज एवं आय की तुलना

गुणांक	ड्रिप सिंचाई प्रणाली की स्थापना से पहले	ड्रिप सिंचाई प्रणाली की स्थापना के बाद में
समान मात्रा के जल के साथ खेती किया हुआ क्षेत्र (हेक्टेयर)	3.75	5.75
कपास उपज (क्विंटल/हेक्टेयर)	20.00	26.00
कुल उपज (क्विंटल)	75	149.50
सकल लाभ (रु/हे)	187500	373750
खेती की लागत (रु/हे)	16000	20700ङ
खेती की कुल लागत (रु.)	60000	119025
शुद्ध लाभ (रु)	127500	254725

* इसमें 70% सब्सिडी के साथ ड्रिप सिंचाई प्रणाली की लागत भी शामिल है।

श्री विनोद कुमार ने जल प्रबंधन पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना, श्रीगंगानगर के शोध केंद्र के वैज्ञानिकों को अपनी सफलता का पूरा श्रेय दिया जिन्होंने जल बचत तकनीकों को लागू करने के लिए उन्हें उचित तरीके से मार्गदर्शन और निर्देशित किया। अब वह ड्रिप सिंचाई प्रणाली के तहत सब्जियों की खेती भी शामिल करने की योजना बना रहा है ताकि उनकी कृषि से लाभप्रदता कई गुना बढ़ सके। उस गाँव के अन्य किसान भी उसके खेतों में नियमित रूप से जाते हैं और वे इस तकनीक से काफी प्रभावित हैं और इस तकनीक को अपनाने के लिए तैयार भी हैं। जो किसान उसके खेत पर जाकर इस तकनीक को देखते हैं वो भी पूर्ण सहमति में हैं कि ड्रिप सिंचाई प्रणाली कृषि के लिए भविष्य की तकनीक है जो नए आयामों को प्राप्त करने के लिए उपयोग में ली जा सकती है।

श्री विनोद कुमार जी के खेत के अन्य चित्र

कृषि-जल

जल प्रबंधन पर हिन्दी पत्रिका

लेखकों से अनुरोध

इस पत्रिका के आगामी अंकों में आलेख देने वाले सभी अनुसंधान कर्मियों, वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों का भाकृअनुप – भारतीय जल प्रबंधन संस्थान आभारी रहेगा। सभी प्रबुद्ध पाठकों व किसानों से हमारा विनम्र अनुरोध है कि वे कृषि व जल प्रबंधन से संबन्धित आलेख हमें प्रकाशन हेतु भेजने का कष्ट करें, ताकि खेती और विशेषकर कृषि जल प्रबंधन से संबन्धित जानकारी उपलब्ध करवाने के अपने उद्देश्य में आपकी यह पत्रिका अपनी पूरी भूमिका सजगता से अदा कर सके। पाठकों की बहुमूल्य प्रतिक्रियाओं का हमें इंतजार रहेगा।

पत्रिका में प्रकाशित आलेख व सामग्री लेखकों की अपनी है तथा संपादकों का इससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

कृषि-जल

जल प्रबंधन पर हिन्दी पत्रिका

डॉ. सुनील कुमार अम्बष्ट, निदेशक, भाकृअनुप – भारतीय जल प्रबंधन संस्थान, भुवनेश्वर द्वारा प्रकाशित तथा
प्रिंटेक ऑफसेट प्राइवेट लिमिटेड, भुवनेश्वर द्वारा मुद्रित